

अध्याय IV: सूर्य और सोम वंश (The Soorya and Soma Vamsas)

1. इस निबंध का विषय पहले ही शीर्षक पृष्ठ पर "भारत-वर्ष का स्थायी इतिहास" बताया जा चुका है। पिछले अध्यायों में हमारे धार्मिक साहित्य में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों के वर्गीकरण के अनुसार, सबसे पहले भारत-वर्ष के भौगोलिक वर्णन के महत्व को समझाया जा सकता है। इसके अलावा, किसी ऐतिहासिक ग्रंथ या कहानी की किताब में भी, यह एक सामान्य अभ्यास और वर्णन का स्वाभाविक क्रम है कि उस देश, शहर या अन्य स्थान के विवरण के साथ शुरुआत की जाए जहाँ कार्य की घटना होना कहा जाता है।
2. जैसा कि ग्रंथों में सामान्य वर्णन मिलता है, भारत-वर्ष को मेरु के दक्षिण में और जम्बू-द्वीप के दक्षिणी छोर पर स्थित कहा गया है।
3. यहाँ हमारे पास समझाने के लिए चार अलग-अलग शब्द हैं, प्रत्येक को अलग से और चारों को एक साथ, ताकि कोई संतोषजनक या ठोस व्याख्या प्राप्त की जा सके, चाहे स्पष्टीकरण की शैली कुछ भी अपनाई जाए। वर्तमान व्याख्या, जो भारत-वर्ष की पहचान भौगोलिक भारत (इण्डिया) से करती है, इन शब्दों में से किसी एक को भी संतोषजनक ढंग से नहीं समझाती है, और न ही यह सभी के संयोजन से कोई प्रासंगिक या सुसंगत विचार प्रस्तुत कर सकती है। यदि भारत-वर्ष का अर्थ भारत लिया जाता है, तो स्वाभाविक रूप से भारत का एक उप-विभाग 'भारत-खंड' अर्थहीन और अनुपयुक्त हो जाता है, क्योंकि ये दोनों शब्द पूरे भारत में फैले हुए हैं। मेरु, जिसकी ऊँचाई 100 योजन या 8 लाख मील बताई गई है, जम्बू-द्वीप के केंद्र में स्थित कहा जाता है। यदि जम्बू-द्वीप का अर्थ 8,000 मील व्यास वाला पार्थिव ग्लोब लिया जाए, तो मेरु जिसकी ऊँचाई पृथ्वी के व्यास से 100 गुना अधिक है, आसानी से दिखाई देना चाहिए। पुनः, जम्बू-द्वीप के सबसे दक्षिणी छोर पर स्थित भारत-वर्ष, दक्षिण ध्रुव के पास कहीं स्थित होना चाहिए।
4. केवल चार तकनीकी शब्दों के संयोजन में इतनी विसंगतियाँ और अनुपयुक्तताओं के बावजूद, दी गई व्याख्या पर कायम रहने की प्रवृत्ति अभी भी बनी हुई है, भले ही इसे स्वीकार कर लिया जाए तो भी यह किसी प्रकार के उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती है।
5. ग्रंथों में दिए गए आयामों को अतिशयोक्ति के रूप में आसानी से छोड़ दिया जाता है और इच्छित महत्व को निर्दिष्ट करने वाली परिभाषाओं की अनदेखी की जाती है और उन्हें काव्यात्मक अलंकार और पौराणिक कल्पनाओं के रूप में पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया जाता है, मानो केवल व्याख्याकार ही ऐसे गंभीर दोषों से मुक्त हों।
6. ग्रंथों को ठीक से पढ़ने के बजाय कल्पनाओं से बने विषय पर गलत विचारों के विवरण में आगे जाना यहाँ किसी भी तरह से लाभदायक कार्य नहीं है।
7. हालाँकि हम अपना समय और बर्बाद किए बिना, स्वयं ग्रंथों की जांच के साथ आगे बढ़ सकते हैं, और पिछले उद्धरणों से निम्नलिखित अंशों को सुविधाजनक संदर्भ के लिए और भविष्य के लिए अनावश्यक शंकाओं को दूर करने के लिए दोहराया जा सकता है, जो हमारे धार्मिक साहित्य में प्रयुक्त मेरु, जम्बू और भारत-वर्ष शब्दों के सही महत्व के संबंध में हैं।
8. उद्धरणों में दिए गए स्पष्टीकरणों को यहाँ बिना शाब्दिक अनुवाद के देखा जा सकता है क्योंकि पूर्ण उद्धरणों के लिए वह पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है।
9. मेरु शब्द के संबंध में दो अलग-अलग संदर्भ समझाए गए हैं, एक दार्शनिक है और दूसरा यौगिक। व्योम, धर्म, वेद-मय, देव-मय और देव-लोक इसके सटीक पर्यायवाची के रूप में उल्लिखित हैं। मेरु को स्पष्ट रूप से देव-भूमि के कमल के केंद्र में स्थित बताया गया है। इस प्रकार इसे आसानी से उस वैदिक केंद्र के प्रतिनिधित्व के रूप में समझा जा सकता है जिससे धार्मिक भक्ति की सभी किस्में प्रसारित होती हैं और जिसकी ओर इसका प्रत्येक रूप अभिसरण करता है। निस्संदेह यह इसका दार्शनिक विचार है।
10. भीतर सुषुम्ना नाड़ी वाले मेरुदंड (spinal column) को योगियों द्वारा मेरु नाम दिया गया है, क्योंकि वे इसमें धार्मिक ध्यान के लिए कुछ तंत्रिका केंद्रों या चक्रों का उपयोग करते हैं। ईड़ा और पिंगला नाड़ियाँ इस मेरु के दोनों ओर स्थित कही गई हैं। हालाँकि, ग्रंथों में मेरु के वर्तमान दृष्टिकोण को पुष्ट करने के लिए कोई और संकेत नहीं मिल सकता है कि यह हिमालय के परे तिब्बत या मध्य एशिया में इस पार्थिव ग्लोब पर स्थित कोई भौतिक पहाड़ी या पर्वत है।

11. भौगोलिक अनुप्रयोग में अपनी जिद के बावजूद, कोई भी स्थानीय पंडित अभी तक मेरु को कहीं भी नहीं दिखा पाया है, और न ही कोई थियोसोफिस्ट (Theosophist) काले या सफेद जादू की अपनी धारणाओं के साथ उसे खोज पाया है।
12. वास्तव में हमारे श्रद्धेय ऋषियों द्वारा धार्मिक ग्रंथों में प्रयुक्त तकनीकी शब्द मेरु, पंडित की भौतिकता और भौतिक समृद्धि के लालच के साथ-साथ थियोसोफिस्ट की जादुई प्रदर्शनों की अतार्किक इच्छाओं के पूर्ण खंडन और अस्वीकृति का प्रतिनिधित्व करता है।
13. यह स्पष्ट रूप से अव्याकृत (**Avyakrita**) को संदर्भित करता है, जो पदार्थ के सभी सीमित प्रदर्शनों का अंत बिंदु है।
14. यहीं से चार वेद महान ब्रह्मा के चार मुखों से उत्पन्न होते हैं।
15. चाहे वह पंडित हो या थियोसोफिस्ट, मेरु को जितना अधिक भौतिक रूप दिया जाएगा, उतना ही वह उनकी दृष्टि से दूर होता जाएगा और हमेशा के लिए ओझल हो जाएगा। यहाँ संदर्भित पृथ्वी और पहाड़ियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से दिव्य (Divine) के रूप में किया गया है, न कि भौतिक पृथ्वी के रूप में; उन्हें 'देव-भूमि' और 'दिव्य-पर्वत' कहा गया है।
16. मेरु के दक्षिण या 'दक्षिण' (**Dekshina**) शब्द के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो सकती है।
17. 'दक्षिण' का शाब्दिक अर्थ 'दाहिना हाथ' है, क्योंकि दिशाएं मूल रूप से उगते सूरज के सामने खड़े होकर निर्धारित मानी जाती हैं।
18. दक्षिण का प्रतिनिधित्व करने वाला दाहिना हाथ स्वयं उस हाथ को संदर्भित करता है जो मानव शरीर में उचित कार्य के लिए सबसे अच्छा उपकरण है।
19. अनंत केंद्र मेरु से बाहर की ओर सभी सीमित धारणाएं सक्रिय या विकासात्मक (Evolutional) हैं, न कि अंतर्मुखी (Involutional) या निष्क्रिय।
20. इसलिए बाहरी बिंदु से लेकर केंद्र मेरु तक की सभी भक्ति साधनाएं सीमित विचारों से निपटने वाली प्रक्रियाओं की श्रेणी में आती हैं, चाहे उन्हें सांख्य के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाए या योग के।
21. 'दक्षिण' सामान्य रूप से दक्षिण भारत को भी संदर्भित करता है, जो दाहिने कान की ओर संकेत करता है जिसे बाएं कान से अधिक मजबूत माना जाता है और जो वेदों को सुनने या अध्ययन करने का प्रतिनिधित्व करता है, जिनका पहला भाग कर्मकांड है।
22. 'दक्षिण' शब्द का अर्थ बुद्धि (**Intellect**) भी है।
23. केंद्र तक पहुँचने तक इस दिशा में लगाई गई बौद्धिक ऊर्जा और उसके परिणामस्वरूप प्राप्त शक्तियों को इस शब्द द्वारा दर्शाया जाता है।
24. जम्बू-द्वीप, जिसकी व्याख्या आमतौर पर पृथ्वी के प्रतिनिधित्व के रूप में की जाती है, स्पष्ट रूप से भक्ति के क्षेत्र (**Sphere of devotion**) को दर्शाता है।
25. इसे दिव्य पृथ्वी के कमल, 'देव-पृथ्वी' के बीच में दिव्य पहाड़ों के बीच स्थित कहा गया है।
26. जम्बू-द्वीप को सुदर्शन-द्वीप भी कहा जाता है, और इसे मूल ब्रह्म के प्रतिबिंब के रूप में समझाया गया है, जिससे शब्द-ब्रह्म या पुराण-पुरुष से संबंधित भक्ति साधनाओं में प्राप्ति के विभिन्न चरणों की ओर संकेत मिलता है।
27. केंद्र में जम्बू से शुरू होने वाले सभी सात द्वीपों का उल्लेख स्पष्ट रूप से दिव्य के रूप में किया गया है, न कि भौतिक पृथ्वी के रूप में।
28. जम्बू, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, नौ वर्षों या महाद्वीपों से बना है जिनमें से आठ का वर्णन आठ सिद्धियों के आनंद के लिए प्रदान किए गए दिव्य स्थानों के रूप में किया गया है।
29. नौवां स्थान जिसका नाम भारत-वर्ष है, उसका उल्लेख कर्म-भूमि या कर्म-क्षेत्र के रूप में किया गया है, जो भक्ति साधना का क्षेत्र है।
30. इस कर्म-भूमि का स्पष्ट उल्लेख 'मध्यम' या बीच के चरण के रूप में और 'श्रुति-रूप' या वेदों के रूप में भी किया गया है।
31. शब्द का 'निरुक्त' या मूल अर्थ स्वयं को सहारा देने या बचाने का विचार देता है, और 'भूमिप्रज्ञ' निस्संदेह उस बौद्धिक विकास को संदर्भित करता है जिसका लक्ष्य रखा गया है।
32. भारत-वर्ष की स्थिति चतुराई से खारे समुद्र (**Saline ocean**) और हिमाद्रि के बीच अंकित की गई है, जो पहले के उत्तर में और दूसरे के दक्षिण में है।
33. उत्तर के लिए प्रयुक्त 'उत्तर' शब्द का अर्थ 'पार करना' (**Cross beyond**) भी है।

34. खारे समुद्र का एक सुंदर और विस्तृत वर्णन, जो संसार-सागर या सांसारिक दुर्भाग्य और दुखों के समुद्र की ओर संकेत करता है, श्रोता में दिया गया है जो ध्यान देने योग्य है।
35. भारत-वर्ष इस प्रकार स्पष्ट रूप से हमारे धर्म में प्रदान की गई भक्ति की विशिष्ट प्रक्रियाओं का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं को शोक और दुख के जल से भरे खारे समुद्र में डूबने से बचा सकता है।

अध्याय IV: सूर्य और सोम वंश (The Soorya and Soma Vamsas) - पैराग्राफ 36 से 75 का अनुवाद

36. हमारी यह काल-जयी धर्म एक अत्यंत मूल्यवान विरासत है जिसे हम वर्तमान आलोचनाओं के दबाव में इतनी आसानी से छोड़ने के लिए प्रेरित नहीं हो सकते। वर्तमान में हमारी स्थिति यह स्पष्ट करती है कि अज्ञानता और उदासीनता के कारण हमने इसमें किस हद तक विश्वास खो दिया है।
37. ४. यह विश्वासपूर्वक आशा की जाती है कि आवश्यक आधिकारिक उद्धरणों के साथ पहले ही दी गई बार-बार की व्याख्याएँ भविष्य में भारत-वर्ष और युगों के सटीक और इच्छित महत्व के संबंध में अनुचित प्रश्नों या शंकाओं पर स्थायी रूप से रोक लगा देंगी। यदि कोई वास्तव में इस जाँच में रुचि रखता है, तो स्वयं ग्रंथों के सीधे संदर्भों द्वारा खुद को प्रबुद्ध या संतुष्ट करना उसके लिए कठिन नहीं है।
38. रामायण और महाभारत नामक दो प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं के लिए निर्दिष्ट विभिन्न अवधियों की अब जाँच की जा सकती है। यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि रामायण के नाम से जाने जाने वाले कई ग्रंथ हैं, जैसे वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, आनंद रामायण आदि, लेकिन महाभारत केवल एक ही है।
39. इनमें से वाल्मीकि-रामायण को २४,००० श्लोकों वाला मान्यता प्राप्त महाकाव्य माना जाता है, हालाँकि इसमें संबंधित युग या काल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है; इसलिए हमें इसे अन्य ग्रंथों से चुनना होगा। महाभारत स्पष्ट रूप से वहाँ वर्णित घटनाओं की अवधि बताता है।
40. महाभारत का महान युद्ध द्वापर युग और कलि के संधि काल (मिलन बिंदु) पर हुआ कहा जाता है। राम का शासन त्रेता युग में ११,००० वर्षों की अवधि के लिए बताया गया है।
41. वर्तमान वैवस्वत-मन्वन्तर में, वर्तमान युग २८वें चक्र का कलि है। परशुराम का जन्म १९वें चक्र के त्रेता में, राम का अवतार २४वें त्रेता में और कृष्ण का २८वें द्वापर में बताया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राम और कृष्ण, यानी रामायण और महाभारत के बीच चार चतुर्युगों का अंतराल है।
42. कलि-युग योग जैसी भक्ति साधनाओं के बिना मानव जाति के सामान्य सांसारिक अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। कलि तमस या अज्ञानता और योग की अनुपस्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।
43. इसलिए द्वापर में कलि से कदम रखना कुछ निर्धारित प्रभावी धार्मिक प्रथाओं के साथ शुरू करने के प्रयास को संदर्भित करता है। इसी महत्वपूर्ण चरण में, उच्च युग में प्रवेश के कारण, महाभारत में वर्णित युद्ध होता है। त्रेता निश्चित रूप से इससे भी उच्च अवस्था है, जैसा कि रामायण में दर्शाया गया है।
44. ये तथ्य हमारे लिए उस क्रम को निर्धारित करेंगे जिसमें इस निबंध में दोनों महाकाव्यों पर चर्चा की जा सकती है, जिसमें महाभारत पहला और रामायण अगला होगा। लेकिन पहले के साथ शुरू करने से पहले, दोनों की वास्तविक सामग्री का कुछ सामान्य विचार प्राप्त करना वांछनीय है।
45. ५. दोनों महाकाव्यों की सामग्री को आम तौर पर कई भाषाओं में मानव इतिहास के रूप में समझा और सुनाया जाता है, जिसमें अकथनीय अंशों को काव्य अतिशयोक्ति के रूप में चुपचाप छोड़ दिया जाता है। इसलिए उन्हें पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वे यहाँ किसी उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकते।
46. दोनों कहानियों की सामान्य रूपरेखा में समानता के बिंदुओं के साथ-साथ महाकाव्यों में पाए जाने वाले अलौकिक चरित्र की घटनाओं की बहुतायत पर ही विशेष रूप से ध्यान दिया जा सकता है।
47. (१) सबसे प्रमुख पात्र राम और कृष्ण हैं, जो भगवान विष्णु के अवतार हैं, न कि साधारण मनुष्य। उनके नीचे के मुख्य और महत्वपूर्ण पात्र देवों के रूपांतरण हैं और उनके शत्रु असुरों और राक्षसों के रूपांतरण हैं। इस प्रकार यह समझना आसान है कि ऐतिहासिक तथ्यों को गठित करने के लिए अपरिहार्य मानवीय तत्व यहाँ लगभग नगण्य है।

48. (२) ऐतिहासिक समय की अवधियाँ त्रेता और द्वापर युगों को संदर्भित करती हैं, जो वर्तमान कलि युग से भिन्न हैं।
49. (३) राम और कृष्ण के अवतार दो मुख्य वंशों, सूर्य और सोम वंशों में होते हैं, जो सूर्य के पुत्र वैवस्वत-मनु से उत्पन्न हुए थे।
50. (४) दोनों अवतारों का उद्देश्य दुष्ट प्राणियों द्वारा पृथ्वी की सतह पर किए गए अनगिनत पापों के कारण उसके बोझ को हटाना है।
51. (५) राज्यों के शासन के कानूनी दावों पर पहले विवाद किया जाता है और उन्हें शून्य कर दिया जाता है।
52. (६) १४ वर्षों की लंबी अवधि के लिए वनों में निर्वासन होता है।
53. (७) दोनों कहानियों के मूल में एक महिला है।
54. (८) निर्वासन के दौरान नष्ट किए जाने वाले बुरे चरित्रों के शत्रु हैं।
55. (९) अंत में अत्यधिक हानि और कठिनाई के साथ एक महान युद्ध लड़ा जाना और जीता जाना है।
56. (१०) विजय के बाद राज्य पुनः प्राप्त किया जाता है और अत्यंत समृद्धि और धर्मपरायणता के साथ शासन किया जाता है।
57. (११) अंत में, स्वर्गारोहण नामक स्वर्ग की ओर प्रस्थान होता है।
58. अभी देखे गए समानता के कई बिंदुओं से, यह आसानी से और उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे लगभग संबद्ध विषयों का उपचार करते हैं जो केवल प्रकार और डिग्री में थोड़े भिन्न होते हैं।
59. ६. इससे पहले कि हम प्रत्येक महाकाव्य के ग्रंथों की अलग से सीधी परीक्षा करें, उपर्युक्त सामान्य बिंदुओं को मूल्यवान धार्मिक सामग्री के रूप में यहाँ स्पर्श किया जा सकता है।
60. सबसे पहले, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि किसी साधारण धार्मिक हिंदू या पंडित के मन में राम और कृष्ण के विष्णु के अवतार होने के बारे में कोई गंभीर संदेह नहीं है। विष्णु के अवतार या अवतार का सटीक महत्व उतना ही गंभीर विषय है जितना कि अब तक जांचे गए अन्य विषय।
61. दिए गए उद्धरण सामान्य रूप से अवतारों से संबंधित सूत्रों को प्रतिपादित करते हैं, बिना उनके किसी विशेष प्रकार को निर्दिष्ट किए।
62. ७. यह आशा की जाती है कि उद्धृत अंश अवतारों के सामान्य सूत्रों का एक निश्चित विचार संतोषजनक ढंग से प्रस्तुत करेंगे।
63. अवतार का शाब्दिक अर्थ है, 'रूप में प्रकटीकरण'। जो निराकार हैं, वे ही उन रूपों में प्रकट होते हैं जो इच्छित उद्देश्यों के लिए आवश्यक होते हैं।
64. उद्धरण ५ में, सामान्य रूप से पूजा के लिए सृजित या कल्पित किए जाने वाले प्रकटीकरण के पांच महत्वपूर्ण और अपरिहार्य मंदों का विवरण दिया गया है।
65. पहला देवता के ठोस रूप के लिंग (स्त्री या पुरुष) को संदर्भित करता है।
66. दूसरा, अंगों या विशेष रूप से हाथों को संदर्भित करता है जिनकी संख्या २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६ या १८ तय होनी चाहिए।
67. तीसरी आवश्यकता इन हाथों को आवश्यक अस्त्रों या उपकरणों से सुसज्जित करना है।
68. चौथा इच्छित देवता के उपयुक्त वाहनों को संदर्भित करता है।
69. पांचवां देवता की सेवा के लिए प्रदान की जाने वाली सेना से संबंधित है।
70. हाथ, उपकरण और सेना विशेष रूप से भक्त द्वारा अपने उन शत्रुओं को हराने के लिए देवता से मांगी गई सहायता के प्रतीक हैं जो हमेशा डराते रहते हैं।
71. ऊपर बताए गए सभी सामानों के बिना, देवता की पूजा को अप्रभावी कहा गया है।
72. इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि अवतारों का प्रकटीकरण लक्ष्य प्राप्त करने के लिए चतुराई से बनाए गए धार्मिक नियमों के अनुसार मनुष्य की मानसिक रचना (योनिकल्पना) है।
73. ऐसे सरल और स्पष्ट विवरणों का गलत अर्थ निकालना वस्तुतः यह नकारना होगा कि वे स्वयं संस्कृत भाषा में व्यक्त किए गए हैं।
74. कोई भी व्याकरणिक मरोड़ और तार्किक बहस ग्रंथों को नष्ट नहीं कर सकती या आत्मघाती नीति के कलंक के अलावा कोई उपयोगी परिणाम नहीं दे सकती।
75. उद्धरण २ स्पष्ट रूप से समझाता है कि दस अवतार अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने तक भक्ति की प्रगति के लिए क्रमिक चरणों के रूप में प्रदान किए गए हैं।

76. विचाराधीन दो अवतार, अर्थात् राम और कृष्ण, गौण प्रकारों के अंतर्गत नहीं आते हैं, बल्कि उन्हें विष्णु के सबसे भव्य प्रकटीकरणों, भारत-वर्ष के महानतम राजाओं और सूर्य तथा सोम वंश के नाम से प्रसिद्ध अत्यंत प्रतिष्ठित शाही परिवारों के सदस्यों के रूप में वर्णित किया गया है।
76. इन दो राजवंशों के नाम ही प्रकट करते हैं कि वे सामान्य रूप से माने जाने वाले पार्थिव नहीं हैं, बल्कि उनका मूल ऊपर, सूर्य और चंद्रमा तक खोजा जाता है। ये भारत-वर्ष पर शासन करने में सक्षम एकमात्र दो राजवंशों के रूप में भी वर्णित हैं। इसलिए हम सूर्य और सोम नामक दो राजवंशों या वंशों के महत्व के संबंध में अपनी जांच जारी रख सकते हैं।
77. इस विषय पर निम्नलिखित उद्धरण धार्मिक उद्देश्यों के लिए उनके अनुप्रयोग का एक स्पष्ट विचार प्रस्तुत करने की संभावना रखते हैं।
78. उद्धरण संख्या 1 के संबंध में: "इस प्रकार, सूर्य और चंद्रमा का मिलन, जीवात्मा और परमात्मा का मिलन, सभी द्वंद्वों और सापेक्षताओं का मिलन योग कहलाता है। मेरुदंड इक्कीस 'हीरे के रत्नों' से बना है। सब कुछ सुषुम्ना में धागे में पिरोए गए मोतियों की तरह टिका हुआ है। चूंकि सुषुम्ना मोक्ष के मार्ग पर स्थित है, इसलिए यह विश्व के रूप में है।
79. चूंकि समय सूर्य और चंद्रमा की स्थिति तय करके निर्धारित किया जाता है, इसलिए योगी सांस लेने के बाद सांस को अपने भीतर ही रोक लेता है। 'ह' ध्वनि के साथ सांस छोड़ना सूर्य के रूप में जाना जाता है, और 'स' ध्वनि के साथ सांस लेना चंद्रमा कहलाता है। दोनों का मिलन 'हठ' (Hatha) कहलाता है। जिस स्थान पर श्वास रहती है, वहीं मन भी रहता है। चंद्रमा मन है, सूर्य श्वास है और दृष्टि अग्नि है, जो बिंदु, नाद और कला के साथ-साथ त्रय (Triads) का प्रतिनिधित्व करती है।
80. यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सूर्य और चंद्रमा प्राण और मन, बिंदु और नाद, ब्रह्मा और विष्णु की ओर संकेत करते हैं। आधुनिक व्याख्याकारों के लिए ये सभी तकनीकी शब्द महत्वहीन और अर्थहीन हैं। ग्रंथों में इतनी स्पष्ट रूप से दी गई इन तकनीकी परिभाषाओं की पूरी तरह से अवहेलना करने वाली वर्तमान व्याख्याएं केवल मूर्खतापूर्ण और धृष्टतापूर्ण हैं।
81. उनकी उचित परिभाषाओं के न्यूनतम ज्ञान के बिना ऐसे शब्दों को केवल गुप्तवाद (occultisms) कहकर समझाना पूर्ण धोखा या पूर्ण विकसित मूर्खता है। हालांकि, एक गंवारी पंडित अपने ग्रामीणों के प्रबोधन के लिए अपनी व्याख्याओं की बुद्धिमत्ता और अचूकता पर प्रसन्न महसूस करता है।
82. उद्धरण संख्या 2 के अनुसार: "अपान वह चंद्रमा है जो पूरे शरीर को तरोंताजा करता है, प्राण या तो सूर्य है या अग्नि जो शरीर के भीतर परिपक्व या विकसित होती है। संसार का उत्थान और पतन चित के साथ-साथ प्राण के खुलने और बंद होने पर निर्भर करता है। वासना और प्राण की धाराओं को बाधित करके मन के कामकाज को रोका जाना चाहिए। यह अभ्यास द्वारा सिद्ध होता है। कर्म या क्रिया का उत्थान और पतन अज्ञानता के उत्थान और पतन पर निर्भर करता है।
83. यहाँ, प्राण को सूर्य और अपान को चंद्रमा के रूप में वर्णित किया गया है। चित और प्राण के कार्यों को संसार के उत्थान और पतन का कारण माना गया है। यह सादा वैज्ञानिक मनोविज्ञान है जिस पर धार्मिक नियम आधारित हैं।
84. वह आलोचक जो इसे अंधविश्वास की संज्ञा देता है, वह निश्चित रूप से किसी अनसुने विज्ञान का प्रोफेसर होगा। हमारे धार्मिक ग्रंथों के सूर्य और चंद्रमा को पंडित के दिल्ली और अवध में नहीं खोजा जा सकता। हालांकि उनके बारे में उसकी गलत धारणाएं भारत के अन्य हिस्सों में उसके विद्वान सहयोगियों के मस्तिष्क में पाई जा सकती हैं।
85. उद्धरण संख्या 3 और 4 के अनुसार: "चंद्रमा इड़ा के माध्यम से और सूर्य पिंगला नाड़ियों के माध्यम से यात्रा करता है। पिंगला से इड़ा में जाने वाली श्वास उत्तरायण के रूप में जानी जाती है, और इसके विपरीत दक्षिणायन के रूप में। सुषुम्ना समय की प्राप्तकर्ता है। चंद्रमा अमृत से संबंधित है और सूर्य विष या जहर से।
86. उद्धरण संख्या 5 और 6: "जो लोग ज्ञान के अभ्यास को अपनाते हैं, जिसे अर्चिर या उत्तरायण-मार्ग के रूप में जाना जाता है, वे सूर्य में विलीन हो जाते हैं और कभी वापस नहीं लौटते। दूसरे जो तप, यज्ञ और दान को अपनाते हैं, जिन्हें धूम या दक्षिणायन-मार्ग के रूप में जाना जाता है, वे चंद्रमा तक पहुंचते हैं लेकिन वापस लौट आते हैं।
87. ये दो निर्धारित मार्गों द्वारा प्राप्य ब्रह्म की दो महिमाएं हैं। जो लोग इसे नहीं समझ सकते, वे कीड़े, पतंगे और विषैले राक्षस हैं। उपर्युक्त उपनिषद, निस्संदेह, आधुनिक व्याख्याकारों की सम्माननीयता

- को एक प्रतिशोध के साथ प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार यह निश्चित है कि वर्तमान प्रकार की विकृत चतुरता अनादि काल से अस्तित्व में रही है, जिससे मानव जाति को अपूरणीय परेशानी हुई है।
88. उद्धरण संख्या 7 और 8: "आत्मा की कल्पना दो तरह से की जाती है, बाहरी और आंतरिक, पहला सूर्य है जिसकी गतियों को प्राण नामक आंतरिक आत्मा पर सादृश्य के रूप में लागू किया जाता है। आत्मा को पांच विभाजनों के रूप में भी माना गया है। प्राण हजार किरणों वाला एकल और उज्ज्वल सूर्य है जो सौ रूपों में प्रकट होता है और विश्व के रूप में मनुष्य के लिए अंतिम शरण है। सूर्य वह आत्मा है जो सभी चरों और अचरों में व्याप्त है।
89. यहाँ बाहरी सूर्य और उसकी गतियों, जो मनुष्य को ज्ञात हैं, का उपयोग आंतरिक और अज्ञात आत्मा के सादृश्य वर्णन के लिए किया गया है। जिस वस्तु से तुलना की जाती है, उसे अब वास्तविक लक्ष्य मानकर गलती की जाती है, और इसे अवैज्ञानिक अंधविश्वास के रूप में निंदा की जाती है। यह पवित्र साहित्य के साथ किया गया एक घोर अपराध है।
90. उद्धरण संख्या 9: "ज्ञान-योग और कर्म-योग मेरे द्वारा लंबे समय से निर्धारित दो धार्मिक मार्ग हैं। केवल कर्म या क्रिया की अनुपस्थिति से ही मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। वह जो हृदय को शुद्ध किए बिना केवल निर्धारित कर्मों से दूर रहता है, वह पाखंडी है। लेकिन वह बुद्धिमान है जो कर्म-योग का अभ्यास करता है और इंद्रियों तथा मन को नियंत्रित करता है।
91. जो योगी अग्नि, प्रकाश, दिन, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण के छह महीनों को अपनाते हैं, वे ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, लेकिन जो योगी धूम, रात्रि, कृष्ण पक्ष और दक्षिणायन के छह महीनों को अपनाते हैं, वे चंद्रमा के प्रकाश तक पहुंचते हैं और वापस लौट आते।
92. यहाँ निर्दिष्ट सूर्य और चंद्रमा के क्षेत्र केवल एक योगी से संबंधित दो प्रकार की उपलब्धियों को संदर्भित करते हैं। वे तकनीकी भाषा में, कर्म-योग और ज्ञान-योग के प्रभावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आधुनिक व्याख्याकार जो इनमें से किसी भी वर्ग से संबंधित नहीं हैं, उन्हें अपनी प्रिय पृथ्वी से गर्म सूर्य या ठंडे चंद्रमा के क्षेत्रों में ले जाए जाने का कोई अनावश्यक डर पालने की आवश्यकता नहीं है।
93. उद्धरण संख्या 10: वशिष्ठ ने कहा— "विवेक और बुद्धि की कमी के कारण और अज्ञानियों की संगति के कारण, मनुष्य स्वयं को 15 कलाओं वाले चंद्रमा के बढ़ने और घटने की तरह, सृष्टि की पशु, मानव और देव प्रजातियों में अंतहीन जन्म और मृत्यु के अधीन करता है। सोलहवीं कला जो सूक्ष्म और शाश्वत है, सोम के रूप में जानी जाती है। इस कला का उपयोग देवों द्वारा नहीं किया जाता है, बल्कि यह देवों का उपयोग करती है। यह अव्यक्त नामक शरीर है, जिसे "मेरा" मानने पर वह इसमें वापस लौट आता है। यदि यह नष्ट हो जाता है, तो मोक्ष प्राप्त होता।
94. याज्ञवल्क्य ने कहा— "पांच सूक्ष्म तत्व और दस इंद्रियां मिलकर 15 बनाती हैं और 16वां मन है। एकता शाश्वत है और विविधता क्षणभंगुर है जो प्रकृति से संबंधित है। ज्ञान और सूर्य अव्यक्त हैं; ज्ञाता, ज्ञात वस्तु और विद्या अव्यक्त से परे पच्योसर्वे तत्व हैं।
95. शुक ने कहा— "योग के बिना कोई भी कर्मों द्वारा मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। सोम हमेशा घटता-बढ़ता रहता है, और वह हिलने पर देवों के साथ पृथ्वी पर गिर जाता है और फिर से ऊपर चढ़ जाता है। इसलिए मैं उसका अनुसरण करना पसंद नहीं करता। लेकिन सूर्य अपनी तेज किरणों से लोकों को गर्म करता है और वह शाश्वत है। मैं निश्चित रूप से इस शरीर को त्यागना और ऋषियों के साथ पूर्णतः समर्पित हृदय से उनके क्षेत्र में रहना पसंद करूंगा।
96. यहाँ तकनीकी सोम और सूर्य को स्पष्ट रूप से दो मार्गों के रूप में समझाया गया है; पहला कई प्रयासों और असफलताओं के बाद मुक्ति सुरक्षित करता है, और दूसरा सीधे लक्ष्य की ओर ले जाता है। पंडित के पास इस सोम को शाब्दिक रूप से चंद्रमा के रूप में समझाने का कोई मौका नहीं है। कहा जाता है कि झकझोरने पर यह देवों के साथ पृथ्वी पर गिर जाता है।
97. पंडित को निश्चित रूप से इसका कोई अंदाजा नहीं है कि यहाँ क्या समझाया गया है। आलोचक और थियोसोफिस्ट के पास भी इससे बेहतर जानकारी नहीं है। लेकिन वे सभी संदर्भित अंश की व्याख्या करने, आलोचना करने और यहाँ तक कि उसमें सुधार करने में सक्षम हैं।
98. उद्धरण संख्या 11: "जब शाश्वत और एकल आत्मा ने दूसरी आत्मा की इच्छा की, तो एक उज्ज्वल प्रकाश उत्पन्न हुआ जिसे सूर्य के रूप में जाना जाता है जो तीनों लोकों को प्रकाशित करता है। सभी जगत्‌ों में पहली रचना होने के कारण इसे आदित्य कहा जाता है जिससे बारह अन्य आदित्य उत्पन्न हुए। शाश्वत परमात्मा विष्णु है जिसे दस आदित्यों या एक के रूप में बोला जाता है। आदित्य योग की

महिमाओं से भरा है। ग्यारह वैराज जो पृथ्वी पर आए हैं उन्हें आदित्य कहा जाता है; बारहवां मेरा हिस्सा है जिसे विष्णु के नाम से जाना जाता है।

99. "जब समुद्र को फिर से मथा गया, तो सोम का जन्म हुआ। वह शरीर के भीतर स्थित जीव और क्षेत्रज्ञ है। सोलह देव, मनुष्य, वृक्ष आदि अपने भरण-पोषण के लिए उस पर निर्भर हैं। उसे रुद्र अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वह विश्व और जल के रूप में है। ब्रह्मा ने उससे प्रसन्न होकर उसे पूर्णिमा का दिन दिया। सोम को यहाँ स्पष्ट रूप से क्षेत्रज्ञ और जीव का प्रतिनिधित्व करने वाला बताया गया है।
100. समुद्र मंथन से उसकी उत्पत्ति का अर्थ है कि उसकी धारणा केवल गहरे ध्यान और स्थिर भक्ति अभ्यास से ही संभव है।
101. उद्धरण संख्या 12: "प्रथम मन्वन्तर में, ब्रह्मा द्वारा लोकों के अपने डिजाइन में दो मार्ग निर्धारित किए गए थे, सूर्य देवयान का द्वार था और चंद्रमा पितृयान का। यह संदर्भित शब्दों के लिए केवल एक अतिरिक्त स्पष्टीकरण है।
102. उद्धरण संख्या 13: "जब जगत अंधकार से भरा, अगोचर और निद्रामग्न था, तब ईश्वर ने अव्यक्त और सूक्ष्म तत्वों का निर्माण किया, जिसने सभी अंधकार को नष्ट कर दिया। शाश्वत पुरुषोत्तम, 26वां तत्व परम-ब्रह्म है जिसे भास्कर या सूर्य के रूप में जाना जाता है। उन्होंने पहले जल का निर्माण किया और उसमें अपना सार लगाया जिससे देव, असुर और मनुष्य उत्पन्न हुए।
103. इस सार को वीर्य, बीज, शुक्र, श्वेत और उग्र नामों से जाना जाता है। इस प्रकार भास्कर ने तीनों लोकों का निर्माण किया। जब वे जागृत हुए तो उन्होंने मानस का निर्माण किया जो सत् और असत् दोनों हैं। इस मानस ने तब विपुला का निर्माण शुरू किया या उससे आकाश उत्पन्न हुआ जिसका गुण शब्द है। यहाँ हम परम-ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करने वाले भास्कर या सूर्य की एक स्पष्ट परिभाषा प्राप्त करते हैं।
104. उद्धरण संख्या 14: "वह देवताओं में सबसे महान है जो उदय होते ही अपनी किरणों से अंधकार को नष्ट कर देता है। जब लोक चरों और अचरों से रहित थे और पूर्ण अंधकार से भरे थे, तब मैं, विष्णु और महेश्वर सभी के हृदय में निवास करने वाले सूर्य का ध्यान करते हुए वहाँ रहे। तब वह प्रकट हुए और उन्होंने सारा अंधकार नष्ट कर दिया। इसलिए, योगी, सांख्य और अन्य सभी मोक्ष की इच्छा रखने वाले, इस देवता का ध्यान करते हैं।
105. धार्मिक सूर्य को यहाँ सभी के हृदय में स्थित प्रकाश देने वाले भगवान के रूप में समझाया गया है। आधुनिक पंडित केवल बाहर देख कर अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं; और वह भीतर देखने की आवश्यकता महसूस नहीं करते जहाँ यह पौराणिक सूर्य उनके डर से छिप जाता है।
106. उद्धरण संख्या 15: "ओम द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली वस्तु विष्णु है जो शब्दों के स्वामी हैं। इस मंत्र का उच्चारण करने से राक्षसों का नाश होता है, और यहाँ संदर्भित सूर्य विष्णु का एक अंश है जो आंतरिक प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है।
107. उद्धरण संख्या 16 और 17: "भ्रुकटी और नासिका के बीच का संगम आकाश और परलोक का मिलन बिंदु है। बुद्धिमान लोग इस मिलन या संध्या का ध्यान करते हैं। परमात्मा और आत्मा की एकता के ज्ञान से, उनके अलग अस्तित्व का विचार नष्ट हो जाता है। एकता का यह ज्ञान संध्या है।
108. उद्धरण संख्या 18 और 19: "आकाश का समुद्र जो तत्वों और देवों का आधार है, सोम कहलाता है। उमा के साथ संयुक्त ईश्वर सोम के रूप में जाने जाते हैं। ये सोम शब्द के लिए अतिरिक्त तकनीकी स्पष्टीकरण हैं। यहाँ बताए गए इसके वास्तविक तकनीकी महत्व के बावजूद, यह बिल्कुल निश्चित है कि उपग्रह चंद्रमा या सोम पौधे पर लागू होने वाली पंडित की इसकी अवधारणा यहाँ पुष्ट नहीं होती है।
109. उद्धरण संख्या 20: "पुनः त्रेता-युग में, बीज (मंत्र के अक्षर) के उद्देश्य के लिए ब्रह्म-क्षत्र के नाम से प्रसिद्ध राजा के साथ सप्त ऋषि उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार राजाओं के साथ सप्त ऋषि निरंतरता के लिए युगों के प्रत्येक चक्र में प्रकट होते हैं। यह मन्वन्तरों में क्षेत्रों का उत्थान और संबंध है, जिसका वर्णन वेदों में किया गया है।
110. उनका क्षय प्रकृतियों के क्षय के अनुसार होता है। उनकी उत्पत्ति, दीर्घायु और क्षय सप्त-ऋषियों को ज्ञात हैं। यह योग का नियमित क्रम है जिसके द्वारा त्रेता में इल और इक्ष्वाकु उत्पन्न होते हैं और कलि में क्षय हो जाते हैं। मन्वन्तर के अंत तक, वे युगों का अनुसरण करते हैं।
111. परशुराम द्वारा पृथ्वी के सभी क्षत्रियों का संहार करने के बाद, इल और इक्ष्वाकु नामक दो वंश उत्पन्न हुए। उन्हें प्रकृति का प्रतिनिधित्व करने वाला घोषित किया गया है। दुनिया में इल प्रचुर मात्रा

- में हैं लेकिन इक्ष्वाकु उतने नहीं। इस तरह, हजारों राज-ऋषि पहले ही गुजर चुके हैं। वर्तमान वैवस्वत-मन्वन्तर में भी, लोकों की स्थिरता उनके उत्थान और पतन पर निर्भर करती है।
112. इस उद्धरण का हर शब्द, हर अभिव्यक्ति अत्यधिक तकनीकी है। यह डर है कि मूल और अनुवाद दोनों पंडित के लिए पेचीदा होंगे, जो अब तक इस गलत धारणा के तहत काम कर रहे हैं कि यहाँ बताई गई तकनीकी धार्मिक दर्शन मानव इतिहास के अलावा और कुछ नहीं है।
113. वे मानवीय लेनदेन और आकर्षक व्यवहारों के बिना धर्म या दर्शन के विचार को सहन नहीं कर सकते; उन्हें मूल्यवान और उपयोगी साहित्य के रूप में सराहने की बात तो दूर की है। यदि ऊपर उद्धृत अंशों को पक्षपात के बिना केवल ध्यान से पढ़ा जाए और सामान्य रूप से व्याख्या की जाए, तो यह देखना मुश्किल नहीं होगा कि उनमें से प्रत्येक में बिना किसी विरोधाभास के विचारों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है।
114. सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी तीन ऐसे ग्रह हैं जिनसे मनुष्य सबसे अधिक निकटता और भौतिक रूप से जुड़ा हुआ है, और उनके आवश्यक और लाभकारी प्रभावों को दैनिक जीवन में सभी के द्वारा वैज्ञानिक रूप से स्वीकार किया जाता है और व्यावहारिक रूप से अनुभव किया जाता है। जिस पृथ्वी पर वह रहता है, वह उसके शरीर के लिए सामान्य और अपरिहार्य आधार है, जो उसके जीवन के लिए जीविका के साधन प्रदान करती है।
115. वह उसी से पैदा हुआ है और उसी के पास वापस जाता है और इसलिए पूरी तरह से उस पर निर्भर है। केंद्रीय मेरु या वेदों वाले भक्ति क्षेत्र को इसलिए भूमि-पद्म या इस प्रपंचमय अस्तित्व के कष्टदायक और अटूट दुखों से मनुष्य की शरण के लिए सबसे आरामदायक, सुगंधित और पवित्र आधार के रूप में वर्णित किया गया है। क्या उदात्त और काव्यात्मक विचार है!!
116. यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि इसकी व्याख्या हठपूर्वक इस शताब्दी में अंग्रेज लेखकों द्वारा रचित भारतीय भूगोल की सामग्री के संदर्भ में की जानी चाहिए। यह वास्तव में एक बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारे पंडित का मस्तिष्क किसी तरह बहुत अधिक जम गया है और अभेद्य हो गया है ताकि ऐसे सामान्य लेकिन महत्वपूर्ण विचार प्रवेश न कर सकें।
117. जब तक वह आवश्यक दिशा में तुरंत खुद को सुधारने के लिए जोरदार प्रयास नहीं करता, तब तक संस्कृत साहित्य के उसके वर्तमान ज्ञान के बावजूद, धार्मिक निर्देश और मार्गदर्शन के लिए उस पर निर्भर रहने का कोई फायदा नहीं है।
118. भूमि-पद्म की भव्यता और उदारता के अनुरूप, इसकी पवित्र सतह को रोशन करने के उद्देश्य से दो सर्वोत्तम स्वर्गीय मशालें, सूर्य और चंद्रमा, उचित रूप से प्रदान की गई हैं। सूर्य को स्पष्ट रूप से आत्मा और चंद्रमा को क्षेत्रज्ञ या व्यक्तिगत स्व के रूप में परिभाषित किया गया है।
119. ऊपर बताई गई सूर्य और चंद्रमा की विशिष्ट विशेषताएं दो वंशों या राजवंशों के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करती हैं। सूर्य वंश का इतिहास परम-ब्रह्म को जानने के लिए अपनाई गई प्रक्रियाओं को संदर्भित करता है और सोम-वंश का इतिहास क्षेत्रज्ञ या व्यक्तिगत स्व के ज्ञान को संदर्भित करता है।
120. निस्संदेह बाद वाले ज्ञान को पहले प्राप्त करना होता है इससे पहले कि पूर्व के लिए प्रयास किया जाए। इस प्रकार, महा-भारत जो सोम-वंश का वर्णन करता है, उसका अध्ययन और अभ्यास पहले किया जाना चाहिए ताकि रामायण के अध्ययन और अभ्यास के लिए खुद को योग्य बनाया जा सके जो सूर्य-वंश का वर्णन करता है।
121. तत्-पद और त्वम्-पद का सटीक ज्ञान सिद्धांत और अभ्यास दोनों में अलग-अलग प्राप्त किया जाना चाहिए, इससे पहले कि वे महा-वाक्य 'तत्-त्वम्-असि' में एक साथ संयुक्त हों, जो व्यक्तिगत स्व का सार्वभौमिक स्व में विलय है।
122. इसलिए दो महाकाव्य इस सबसे महत्वपूर्ण विषय से निपटते हैं, सामान्य पौराणिक शैली में प्रक्रिया का पूरा विवरण प्रदान करते हैं, जिसमें अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं और दूर की जाने वाली बाधाएं उनके आवश्यक उपचारों के साथ शामिल हैं।
123. महा-भारत और रामायण इसलिए पवित्र वेदों पर मूल और वास्तविक भाष्य हैं, जो हमारे प्राचीन और अमूल्य दर्शन के भंडार हैं। यह बार-बार देखा गया है कि वेदों का अध्ययन न केवल पुराणों और इतिहासों के ज्ञान के बिना अधूरा होगा, बल्कि गलत प्रयोग और गलत व्याख्या द्वारा खतरनाक भी साबित होगा।

124. 'तत्' और 'त्वम्' के आवश्यक और अंतिम अर्थों की जांच अध्याय II में उनके वाच्यार्थों और लक्ष्यार्थों के साथ पहले ही की जा चुकी है। जब संपाश्विक और परिस्थितिजन्य सामानों और गुणों को सामान्य रूप से 'तत्' और 'त्वम्' द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए दो विचारों से हटा दिया जाता है, तो हम दोनों में एक ही अवशेष पर पहुँचते हैं।
125. इसलिए महा-वाक्य 'तत्-त्वम्-असि' के अनुसार उनका मिलन केवल शब्दों का विषय है। उपरोक्त पूरे मामले की दार्शनिक व्याख्या है। सूर्य और सोम शब्दों का एक माध्यमिक और यौगिक उपयोग भी है।
126. दाहिने और बाएं नथुने के माध्यम से सांसों को योगियों द्वारा सूर्य और सोम कहा जाता है, जो देव-यान और पितृ-यान के दार्शनिक वर्णन का बारीकी से पालन करते हैं। उत्तरायण-मार्ग सूर्य की ओर ले जाता है और दक्षिणायन-मार्ग क्रमशः चंद्रमा की ओर ले जाता है।
127. चंद्रमा या क्षेत्रज्ञ या शुद्ध मन को 16वीं कला के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें पंद्रह कलाएं 5 तत्त्वों और 10 इंद्रियों से मिलकर बनी हैं, जिनका उपयोग रूपक के रूप में चंद्रमा की पंद्रह कलाओं या दिनों के रूप में किया जाता है जो इसके बढ़ने और घटने के साथ होते हैं।
128. दार्शनिक और यौगिक दोनों वर्णनों में, सूर्य और चंद्रमा क्रमशः हृदय और सिर में स्थित हैं, और यह स्थान आमतौर पर पुराणों और इतिहासों में वर्णित पाया जाता है। इस प्रकार हमेशा सभी धार्मिक ग्रंथों में चंद्रमा को सूर्य से बहुत ऊपर रखा जाएगा।
129. शब्दों के इस सरल तकनीकी उपयोग को समझे बिना, दो ग्रहों के गलत स्थान को ठीक करने के लिए कई चतुर आविष्कार सामने लाए जाते हैं और अक्सर पूर्वजों की खगोलीय प्रगति पर अहंकारपूर्वक सवाल उठाया जाता है।
130. इसके विपरीत, इन दो महत्वपूर्ण ग्रहों के गलत स्थान के मात्र तथ्य ने हमें स्वाभाविक रूप से यह अनुमान लगाने के लिए प्रेरित किया होना चाहिए कि कुछ अलग तरह की व्याख्या की जा रही थी। लेकिन आज भी शायद, अधिकांश पंडित ऐसे किसी भी प्रयास को ईश-निंदा के कृत्य के रूप में मानेंगे।
131. उनके विचार में, धार्मिक व्याख्याएं अनिवार्य रूप से एक अत्यंत अनुचित प्रकार की अज्ञानता और कट्टरपंथ पर आधारित होनी चाहिए। यह कमोबेश वह आधार है जिस पर आधुनिक संस्कृत अध्ययन बना है।
132. भारत में हाल ही में अंग्रेजी शिक्षा के लिए मौजूदा अन्य कॉलेजों के अनुकरण में शुरू किए गए संस्कृत कॉलेजों ने अज्ञानता और कट्टरपंथ के कई पुराने पत्थरों को अपनी नींव के लिए इस्तेमाल किया होगा, साथ ही कुछ विदेशी पत्थरों और सामग्रियों के साथ जो उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के कठिन वातावरण का सामना नहीं कर सके।
133. ऐसे निर्माणों का भविष्य काफी निराशाजनक है, और स्वाभाविक उत्पाद पुराने प्रकार के पंडितों के एक नए समूह से बेहतर कुछ नहीं हो सकता जो अधिक असंतुष्ट और कम धार्मिक रूप से झुके हुए हैं।
134. ये नए विद्वान अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत स्वयं धार्मिक ग्रंथों की शुद्धता और महत्व पर सवाल उठाने का साहस भी कर सकते हैं और कठिनाइयों को आदरणीय लेखकों की मासूम अज्ञानता के मामलों के रूप में निपटा सकते हैं।

अध्याय IV: सूर्य और सोम वंश के अगले 45 पैराग्राफ (136 से 180) का हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है:

136. यह देखना बिल्कुल भी कठिन नहीं है कि ग्रंथों में पेश किए गए शब्दों का तकनीकी उपयोग आखिरकार इतना सरल है, हालांकि इसके कारण पैदा हुआ भ्रम अनुपातहीन रूप से बहुत बड़ा है।
137. उद्धरण संख्या 20 पर आते हुए, जो सीधे सूर्य और सोम वंशों की उत्पत्ति से संबंधित है, यह आशा की जाती है कि ग्रंथों में 'सूर्य' और 'सोम' शब्दों के उपयोग पर पहले ही दी गई व्याख्याएँ, प्रस्तुत विवरणों के सार को आसानी से समझने योग्य बना देंगी। यहाँ उद्धरण की टुकड़ों में सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए, क्योंकि इसमें विषय पर पूरी जानकारी शामिल है। कलि युग के बाद, कृत-युग वापस आता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि कृत-युग भक्ति साधना में पूर्णता के चरण को संदर्भित करता है, जैसा कि यह शब्द स्पष्ट रूप से दर्शाता है।
138. इसी प्रकार कलि अज्ञानता और धार्मिक योग्यता की अनुपस्थिति के चरण का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए वे दोनों दो चरम सीमाओं का संकेत देते हैं जिनके लिए ग्रंथों पर और स्पष्टीकरण की

- आवश्यकता नहीं है। कृत में, जो ग्रंथ सिखा सकते थे वह प्राप्त कर लिया गया है और कलि में, उनके पास सिखाने के लिए कुछ भी नहीं है क्योंकि यह धार्मिक प्रशिक्षण की सीमाओं के बाहर है।
139. केवल शेष दो युग, अर्थात् त्रेता और द्वापर, धार्मिक उन्नति के लिए व्यावहारिक निर्देश प्रदान करने के उद्देश्य से ग्रंथों में उपचारित किए जाने योग्य हैं। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि हमारे धार्मिक साहित्य की सामग्री समग्र रूप से मुख्य रूप से त्रेता और द्वापर युगों पर लागू होती है। जैसा कि हमने देखा है, कृत धार्मिक निर्देश की आवश्यकताओं से परे है और कलि धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र से नीचे है।
140. दंडात्मक, नागरिक और राजनीतिक कानून, कृषि और वाणिज्य, इतिहास और भूगोल, और वे सभी भौतिक विज्ञान जो अभिव्यक्ति के सामान्य अर्थ में मानवता के कल्याण में योगदान करते हैं, कलि के प्रभुत्व के अंतर्गत आते हैं और सांसारिक बुद्धिमान व्यक्ति के विशेष विशेषाधिकारों के रूप में हटा दिए जाते हैं।
141. इसलिए किसी को भी इस बात पर पछतावा करने या नाराज होने की आवश्यकता नहीं है कि प्राचीन ऋषियों ने कभी आधुनिक प्रगति के रास्ते में खड़े होने का प्रयास किया; इसके विपरीत, वे पूरी तरह से मैदान से चुपचाप हट गए और उन्होंने 'धर्म' (Religion) नामक एक कम आडंबरपूर्ण विषय को अपनाया, जिसे उन्होंने विशेष रूप से सांसारिक उन्नति के लिए यहाँ गिनाई गई सभी चीजों से खुद को लगभग अलग करके खोजा था।
142. इस प्रकार हम सुरक्षित रूप से आश्वस्त हो सकते हैं कि हानिरहित ऋषि सामान्य रूप से मानव जाति के बीच फैशन या शिष्टाचार के लिए धर्म के रूप में जो कुछ भी चलता है, उसमें हस्तक्षेप करने का साहस नहीं करेंगे, न ही उन तथाकथित सुधारों के साथ जो उनके कार्यों में बताए गए धार्मिक सिद्धांतों की व्यावहारिक अस्वीकृति पर आधारित हैं। विभिन्न दिशाओं में इस प्रकार प्रयास किए गए आधुनिक सुधारों के पक्ष या विपक्ष में व्यर्थ में उनके नाम घसीटना निश्चित रूप से अन्याय का कार्य होगा।
143. जैसा कि एक वकील आपत्ति करेगा, उन्हें मुकदमों में पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया जा सकता है। यह अक्सर भूल जाते हैं कि धार्मिक राजपत्र (Religious Gazette) ने आधुनिक न्यायाधिकरणों के सामने पेश होने की आवश्यकता से उनकी छूट की घोषणा बहुत पहले कर दी है। कलि पूरी तरह से उनके अधिकार क्षेत्र से परे है और वे अतिक्रमण करने का साहस नहीं करेंगे। हम अपने स्वयं के ईर्ष्यापूर्ण क्षेत्र में पूरी तरह से स्वतंत्र हैं और अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं। हम निस्संदेह खुद को बेहतर बनाने के लिए किए गए सिर के बल प्रयासों में उनकी चंगुल से बिल्कुल बाहर हैं, बिना यह जाने कि हम क्या कर रहे हैं और शायद यह भी जाने बिना कि हम क्या चाहते हैं। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि कृत और कलि को उनकी विशेषताओं के सामान्य विवरण से अधिक की आवश्यकता नहीं है, केवल त्रेता और द्वापर ही उन चीजों से निकटता से जुड़े हुए हैं जिन्हें ग्रंथों में धर्म के रूप में जाना जाता है।
144. उद्धरण 20 पर वापस आते हुए हम पाते हैं कि सप्त ऋषि प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से कृत से त्रेता-युग में उतरते हैं, जिनके साथ 'ब्रह्म-क्षत्र' (Bramhah-kshetras) नामक आवश्यक शासक होते हैं। यह क्या प्रतिनिधित्व करता है, इसकी व्याख्या भी उसी उद्धरण में की गई है। पिछले पृष्ठों में ऋषियों के विवेचन में हमने पाया कि सप्त-ऋषि सप्त-प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उद्धरण स्पष्ट रूप से बताता है कि संदर्भित मामला योग की क्रमिक प्रगति है।
145. सूर्य और सोम वंश के शासकों के बारे में कहा जाता है कि वे त्रेता में उत्पन्न होते हैं और कलि में विलुप्त हो जाते हैं और यह प्रक्रिया मन्वंतर समाप्त होने तक दोहराई जाती है। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि त्रेता सूर्य-वंश के शासन का प्रतिनिधित्व करता है और द्वापर सोम-वंश के शासन का। दोनों वंश 'ब्रह्म-क्षत्र' नामक एक सामान्य जाति के प्रतीक होते हैं। इसलिए इस शब्द की परीक्षा हमें पूरे विवरण को समझने के लिए पर्याप्त जानकारी प्रदान करेगी।
146. उद्धरण में ही हम पाते हैं कि जब परशुराम द्वारा अन्य सभी शासकों को नष्ट कर दिया जाता है, तब दो राजवंशों का उदय होता है और वे प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम यह भी पाते हैं कि लोकों का निर्माण और विनाश इन दो राजवंशों के उत्थान और पतन पर निर्भर करता है। लोकों की परीक्षा बहुत पहले की जा चुकी है और पाया गया है कि वे सर्वशक्तिमान की महिमा के रूप में ध्यान की जाने वाली प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

147. इस प्रकार हम यह समझने लगते हैं कि सप्त-ऋषि, लोक और दो शाही राजवंश लगभग एक विशिष्ट मामले की बात करते हैं। हालाँकि, 'ब्रह्म-क्षेत्र' कहलाने वाली दो राजवंशों की जाति यहाँ सबसे महत्वपूर्ण और सार्थक बिंदु है। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्र' शब्दों का सामान्य अर्थ शरीर या भौतिक रूप है, और संदर्भित शब्द स्पष्ट रूप से निराकार ब्रह्म की किसी रूप में कल्पना का संकेत देता है।
148. सगुण-निर्गुण, सकल-निष्कलं, परापर, पुराण-पुरुष, अपर-ब्रह्म या शब्द-ब्रह्म, जो अकेले विभिन्न रूपों में ध्यान किए जाने योग्य है या भाषा के उपयोग द्वारा धार्मिक ग्रंथों में वर्णित होने में सक्षम है, निस्संदेह 'ब्रह्म-क्षेत्र' द्वारा वर्णित वस्तु है। ऊपर बताई गई सप्त-प्रकृतियों के साथ इसका अपरिहार्य संबंध इसलिए और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रखता है। शब्द ब्रह्म के यहाँ बताए गए विभिन्न पर्यायवाची शब्दों को पिछले पृष्ठों में परिभाषित किया गया है, लेकिन भविष्य के संदर्भ के लिए उन्हें दोहराया जा सकता है।
149. मनुष्य और पर-ब्रह्म के बीच मध्यस्थ के रूप में इस अपर-ब्रह्म की आवश्यकता के लिए पहले से बताए गए कारणों को भुलाया नहीं जाना चाहिए, और धार्मिक पूजा के लिए निर्धारित इस शब्द-ब्रह्म के विभिन्न रूपों को काव्यात्मक रूपकों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए जैसा कि बहुत ही सामान्य और आसानी से किया जाता है।
150. जब तक इस भौतिक दुनिया के अधिकांश मामलों को मनुष्य द्वारा असहनीय और वास्तविक दुखों के रूप में अनुभव और स्वीकार किया जाता रहेगा, तब तक हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा विज्ञान और दर्शन के सख्त अनुरूप निर्धारित धार्मिक प्रथाएं निस्संदेह उनके लिए वास्तविक उपचार साबित होंगी, यदि उनका ईमानदारी और भक्ति के साथ पालन किया जाए। उपचार उतने ही सत्य हैं जितने कि बीमारियाँ स्वयं, वैज्ञानिक और व्यावहारिक दोनों रूप से। तब उन्हें रूपक या मिथक कैसे कहा जा सकता है? भौतिक जगत के सही दार्शनिक विश्लेषण में, निस्संदेह, आलोचक स्वयं एक मिथक और एक झूठा व्यक्तित्व है, लेकिन वह जो आलोचना अब कर रहा है वह एक निचले दृष्टिकोण से है, जिसे उस महान और उच्च दार्शनिक स्तर के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता जहाँ उक्त आलोचक को प्रकट होने का कोई दर्जा नहीं है।
151. इस प्रकार धार्मिक ध्यान के लिए किसी रूप में निराकार के निकटतम दृष्टिकोण की नितांत आवश्यकता है, जैसा कि मनुष्य वर्तमान में गठित है, जब तक कि वह उच्चतम स्तर के लिए खुद को योग्य नहीं बना लेता। निम्नलिखित गद्यांश यहाँ संदर्भित शब्द-ब्रह्म का वर्णन और व्याख्या करते हैं:
152. उद्धरण संख्या 1: "प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की दो किस्में हैं, अर्थात् शब्द-ब्रह्म का ज्ञान और पर-ब्रह्म का ज्ञान। पहले की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से दूसरे की ओर ले जाती है।"
153. उद्धरण संख्या 2: "पर-ब्रह्म शाश्वत और बिना रूप के है। हालाँकि इसके तीन रूप हैं, अर्थात् निष्कल, सकल और सकल-निष्कलं। वह जो सत्य ज्ञान और आनंद है वह निष्कल है। लेकिन वह जो माया और अविद्या के साथ-साथ तीन गुणों के साथ संयुक्त है, महेश्वर और सकल-निष्कलं कहलाता है। यही वह रूप है जिसने तप और ज्ञान के द्वारा प्रजाओं के निर्माण की इच्छा की।" सर्वशक्तिमान ईश्वर को यहाँ शब्द-ब्रह्म और सकल-निष्कलं का संकेत देने वाला स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।
154. उद्धरण संख्या 3: "नाम और रूप जगत के गुण हैं; सत्, चित् और आनंद जगत के गुणों की तुलना में ब्रह्म के गुण हैं। प्रकृति की सात्विक अवस्था को माया कहा जाता है, और इसमें ब्रह्म के प्रतिबिंब को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में जाना जाता है।" यह उसी शब्द-ब्रह्म की दार्शनिक व्याख्या है।
155. उद्धरण संख्या 4: "वह जो सर्व-बुद्धिमान है वह तप और ज्ञान के रूप में है। इससे नाम, रूप और अन्नम या अव्याकृत उत्पन्न हुआ। ज्ञानी जन त्रेता में विभिन्न तरीकों से इस शब्द-ब्रह्म के कार्यों को मंत्रों में देखते हैं। जो लोग उच्चतम सत्य को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जो लोकों में सही मार्ग है।"
156. यहाँ यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शब्द-ब्रह्म के कार्य त्रेता-युगों और मंत्रों में देखे जाते हैं, और वे मनुष्य के अनुसरण के लिए उचित धार्मिक मार्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उद्धरण संख्या 5 और 6: "महत् से लेकर स्थूल तत्त्वों तक के तत्त्वों के विनाश को समय की व्याख्या करने वालों द्वारा प्रकृति का प्रति-सर्ग कहा जाता है। अव्यक्त क्षेत्र (Kshetra) है और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ (Kshetragna) हैं।

वह सृष्टि जो बुद्धि के बिना अचानक बिजली की तरह घटित होती है, क्षेत्रज्ञ पर आधारित होती है और प्रकृति सगै के रूप में जानी जाती है।"

157. उद्धरण संख्या 7 और 8: "निष्कलं पहला है, सकल-निष्कलं दूसरा है और सकल तीसरा है। शिव योगियों के उपयोग के लिए, सभी तत्वों के निर्माण और लोकों की उत्पत्ति का अपनी इच्छा से निर्णय लेते हैं। निष्कलं तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है, सकल मूर्ति या रूप है और सकल-निष्कलं प्रभाव (Prebhava) है।"
158. 'प्रभाव' शब्द का शाब्दिक अर्थ है महिमा, शक्ति, विस्तार। यही वह विषय वस्तु है जिससे पूरे धार्मिक साहित्य में निपटा गया है। हालांकि पंडित की व्याख्या पवित्र ग्रंथों से ईश्वर के सभी 'प्रभाव' को निकाल देती है और उसके स्थान पर मनुष्य का प्रभाव रख देती है। इसके बावजूद, पंडित को निस्संदेह लगता है कि उसने बहुत उपयोगी कार्य किया है।
159. उद्धरण संख्या 9: "तर्कशास्त्र के अनुसार छह प्रकार के प्रमाण हैं। वह जिसे इनमें से किसी भी पद्धति से नहीं खोजा जा सकता वह शिव-तत्त्व है। यह अपने भक्तों के हित में, सभी तत्वों और लोकों के निर्माण और उनके संरक्षण के उद्देश्य से अपनी इच्छा से एक शरीर धारण करता है। यह शरीर तीन प्रकार का होता है, निष्कलं जिसे 'परम' कहा जाता है, सकल जिसे 'परमम्' कहा जाता है और सकल-निष्कलं जिसे 'परापरम्' के रूप में जाना जाता है।"
160. स्पष्ट रूप से पंडित को आज तक 'परम', 'परमम्' और 'परापरम्' शब्दों के बीच किसी ऐसे तकनीकी या महत्वपूर्ण अंतर के अस्तित्व का पता नहीं है। इन छोटी-छोटी बातों में भी वह एक पूर्ण वेदांती है जो सही और गलत, अर्थ और निरर्थक जैसे सभी अनावश्यक भेदों से रहित है। उद्धरण संख्या 10: "अथर्वण श्रुति दो प्रकार के आत्मा के बीच अंतर करती है, परा और अपरा; पहला गुणों के बिना है और दूसरा अहंकार के साथ संयुक्त है। उनकी एकता का ज्ञान योग कहलाता है। इस प्रकार भौतिक शरीर के भीतर हृदय में स्थित आत्मा अपरा-ब्रह्म कहलाती है।"
161. "क्षेत्र और भीतर स्थित आत्मा क्षेत्रज्ञ कहलाती है; वह अव्यक्त और परम के रूप में रहती है और 'अ' से 'क्ष' तक के अक्षरों की व्यवस्था निर्धारित करती है। पांच तत्वों से बने शरीर में, आंतरिक अंगों के साथ संयुक्त यह आत्मा पुराण-पुरुष, शब्द-ब्रह्म और अपरात्मा के रूप में जानी जाती है।"
162. मनुष्य के हृदय के भीतर स्थित ईश्वर के लिए यहाँ विभिन्न पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। वह धार्मिक साहित्य में अपरात्मा, अपरा-ब्रह्म, क्षेत्रज्ञ, पुराण-पुरुष और शब्द-ब्रह्म के रूप में जाना जाता है। यह ईश्वर की वह अवधारणा है जिसका आनंद मनुष्य के आंतरिक अंगों द्वारा उनकी शुद्ध और भक्तिमय अवस्था में लिया जाता है। जब योग की ओर भी उच्च प्रक्रियाओं द्वारा उनका खेल समाप्त हो जाता है, तो वह परमात्मा बन जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस पुराण-पुरुष का इतिहास मनुष्य के उसके आगे के भक्ति मार्च में धार्मिक कार्यों से संबंधित है, जो इस ईश्वर की अधिक से अधिक महिमाओं की खोज और आनंद लेता है जब तक कि वह दिव्य आनंद के सागर में अपने अलग व्यक्तित्व को नहीं खो देता। बचपन जैसी बुद्धि वाला पंडित मानवीय वीरता और महानता की अपनी ओछी धारणाओं के साथ अब हमारी इस पवित्र और मूल्यवान विरासत को और अपवित्र न करे।
163. यहाँ पूर्ववर्ती व्याख्याओं के सार को संक्षेप में प्रस्तुत करना और उसे हमारे सामने स्पष्ट रूप से रखना अत्यंत आवश्यक है ताकि मुख्य विषय से जुड़े महत्वपूर्ण बिंदुओं की व्याख्याओं के संबंध में सभी संभावित शंकाओं से बचा जा सके। हम उपरोक्त उद्धरणों से यह जान सकते हैं कि ब्रह्म को आम तौर पर परा और अपरा में वर्गीकृत किया गया है; और बाद वाला मनुष्य को ज्ञात सभी उच्चतम और सर्वोत्तम गुणों के भंडार के रूप में निरपेक्ष (Absolute) की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे कि सर्वशक्तिमान, पूर्ण-आनंद, शाश्वत, सर्वज्ञ, सर्व-दयालु, सर्वद्रष्टा आदि।
164. बेशक ये गुण केवल इस भौतिक दुनिया में मनुष्य द्वारा अनुभव की गई विपरीत कमियों की तुलना में आरोपित किए गए हैं। पुनः सकल, सकल-निष्कलं और निष्कलं में एक और वर्गीकरण है। पहला भौतिक रूप को संदर्भित करता है और अंतिम पर-ब्रह्म को। दूसरा अपरा-ब्रह्म या शब्द-ब्रह्म के समान ही है।
165. जिसका उपयोग धार्मिक प्रथाओं के उच्चतम रूपों, अर्थात् ज्ञान-योग और कर्म-योग में लाभ के साथ किया जाता है। इन उद्धरणों द्वारा प्रस्तुत विस्तृत व्याख्याओं के साथ, सकल-निष्कलं (सकल और निष्कल का संयोजन) शब्द के सही अनुप्रयोग को समझना कठिन नहीं है, जो अपरा-ब्रह्म, पुराण-पुरुष, शब्द-ब्रह्म और ईश्वर के पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जा रहा है, और यह कि वे सभी समान रूप से 'ब्रह्म-क्षेत्र' द्वारा व्यक्त किए गए एक ही विचार को संदर्भित करते हैं।

166. वास्तविक ब्रह्म 'परम्' या 'निष्कलं' है, अज्ञात और अनदेखा, जो तर्क या बुद्धि के प्रांत से पूरी तरह परे है, जहाँ जानने और देखने का कोई अर्थ नहीं है। 'सकलम्', जो जाना और देखा जाता है वह विशुद्ध रूप से भौतिक है, वस्तुतः कारण के बजाय प्रभाव का प्रतिनिधित्व करता है। 'सकल-निष्कलं' भौतिक प्रभाव नहीं है बल्कि आध्यात्मिक कारण का प्रतिनिधित्व करता है।
167. जो ब्रह्मांड के मूल निर्माता का विशेष विशेषाधिकार है, जिस पर वर्तमान में गठित मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं है। इस आध्यात्मिक कारण को सात प्रकृतियों में वर्गीकृत किया गया है, और निर्धारित धार्मिक प्रथाएं विशेष रूप से उनके कार्यों के परिणामस्वरूप होने वाले बंधन से बाहर निकलने के साथ-साथ अंतिम प्रकृति या पवित्र माया तक पहुँचने के उद्देश्य से उन्हें संदर्भित करती हैं जिसमें वास्तविक ब्रह्म अपरा-ब्रह्म के रूप में परिलक्षित होता है।
168. इस प्रतिबिंब की धारणा आपको आगे उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जाती है। यह हमारे प्राचीन साहित्य में प्रदान किया गया सबसे तर्कसंगत, वैज्ञानिक और दार्शनिक धर्म है, जो सूर्य और सोम वंश के रूप में प्रसिद्ध दो विशिष्ट राजवंशों के शासकों के इतिहास के रूप में है। उनके शासन की अवधि हम पहले ही पा चुके हैं कि वह त्रेता और द्वापर युगों तक सीमित है और उनका क्षेत्रीय विस्तार जम्बू-द्वीप में भारत-वर्ष तक सीमित है।
169. कलि युग किसी भी राजवंश में किसी भी शासक के जन्म के लिए हर तरह से अनुपयुक्त है। वे त्रेता में उत्पन्न होते हैं और कलि में विलुप्त हो जाते हैं। हालांकि वे 'ब्रह्म-क्षत्र' जाति के हैं, और ब्राह्मणों की मदद करने और सभी को हर संभव चोट और दुर्भाग्य से बचाने के लिए बनाए गए हैं। इन दो जातियों का अंतर ब्रह्मा द्वारा त्रेता युग में बनाया गया था।
170. ये पंक्तियाँ पर्याप्त रूप से स्पष्ट और सार्थक हैं। कृत-युग आवश्यक अभ्यासों की पूर्णता का संकेत देता है, ब्रह्म-क्षत्र या अपरा-ब्रह्म से परे के चरण का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात् स्वयं पर-ब्रह्म की प्राप्ति, जहाँ इतिहास और भूगोल, पूजा और पूजा न होने के सभी विचार पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी यहाँ पूरी तरह से पिघलकर एक हो जाती है। इसलिए पर-ब्रह्म शब्दों में वर्णन करने या विचार में कल्पना करने में सक्षम नहीं है।
171. अपरा-ब्रह्म जिसे बहुत ही उपयुक्त रूप से पुराण-पुरुष भी कहा जाता है, वह एकमात्र पुरुष या अस्तित्व है जिसे विशेष रूप से धार्मिक उन्नति के लिए निर्धारित प्रक्रियाओं को स्वीकार करने और निभाने के लिए इच्छुक मानव जाति के लाभ के लिए पुराणों में वर्णित किया जा सकता है। यह कमोबेश इस विषय पर हमें विरासत में मिले विशाल ग्रंथों में हमारे श्रद्धेय ऋषियों द्वारा प्रस्तुत विस्तृत और स्पष्ट विवरणों का सारांश है।
172. और इसमें कोई संदेह नहीं है कि परिवर्तनों या प्रक्षेपों द्वारा किसी भी दोषपूर्ण शरारत के बिना, कलि युग की इस अत्यधिक सभ्य शताब्दी में, इन बहुत ही ग्रंथों की सबसे हास्यास्पद और अनुचित तरीके से इतनी स्पष्ट और लापरवाही से गलत व्याख्या की जा रही है। पूरे मामले पर परिपक्व विचार करने के बाद, हम इन गलत व्याख्या करने वालों के प्रति बहुत उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए मजबूर हैं जिन्हें हम स्वाभाविक रूप से दोष देने के आदी हैं।
173. इस दिशा में संभावित और संभावित गलतियों की भविष्यवाणी हमारे बुद्धिमान ऋषियों द्वारा स्पष्ट रूप से की गई है और उनका वास्तविक कारण विशेष रूप से कलि को ही बताया गया है, सामान्य रूप से मानव जाति पर कोई दोष डाले बिना। विचाराधीन युग का जीवंत विवरण प्रस्तुत करने वाला निम्न गद्यांश, विशेष रूप से इस संबंध में कुछ रुचि का होगा।
174. "लोगों के दुष्ट आचरण से हर चीज का सार चला गया है। चीजें भीतर अनाज के बिना भूखी की तरह रह गई हैं। ब्राह्मण मामूली आय के लिए धार्मिक कहानियों को एक आदमी से दूसरे आदमी तक और घर-घर ले जाने लगे, और कहानियों की भावना वाष्पित हो गई है। नास्तिक, क्रूर और दुष्टों ने पवित्र स्नान के केंद्रों पर कब्जा करना शुरू कर दिया, और इसलिए उनके प्रभावी गुण उन स्थानों से चले गए हैं।"
175. "क्रोध, लोभ और लालच से उत्तेजित लोग तप करने लगे; इसलिए इसका प्रभाव लुप्त हो गया है। ध्यान योग का अभ्यास उन अभिमानी लोगों द्वारा किया जाने लगा जिनका कोई धार्मिक अध्ययन नहीं है या जिनका अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं है और जो नीच लोगों के साथ जुड़े हुए हैं; इसलिए इसका प्रभाव भी विलुप्त हो गया है। पंडित मुक्ति से संबंधित मामलों में कम से कम रुचि के बिना भैंसों की तरह केवल प्रजनन में लगे हुए हैं। यह सब युग का धर्म है और किसे दोष दिया जाए?" यहाँ युग को किसी विशेष काल को निर्दिष्ट करने के रूप में गलत नहीं समझा जाना चाहिए। हम पहले ही

- देख चुके हैं कि मनुष्य युग बनाता है, न कि युग मनुष्य को। उद्धरण केवल भौतिक समृद्धि को सुरक्षित करने के लिए अपने चिंतित मूड में हर समय के मनुष्य के वर्णन का संकेत देता है।
176. त्रेता और द्वापर युगों में भारत-वर्ष के लिए शासकों की आपूर्ति करने वाले सूर्य और सोम वंश के सामान्य महत्व को समझने के बाद, इन राजवंशों की विशिष्ट विशेषताओं को जानना आवश्यक है।
177. या दूसरे शब्दों में रामायण और महाभारत की वास्तविक सामग्री का सार खोजना आवश्यक है। हम पहले ही देख चुके हैं कि वे विशेष रूप से ज्ञान-योग और कर्म-योग की प्रक्रियाओं को संदर्भित करते हैं और क्रमशः सार्वभौमिक आत्मा और व्यक्तिगत आत्मा से निपटते हैं; और जब तक बाद वाले को योग की प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त नहीं किया जाता है, तब तक हम पूर्व के लिए योग्य नहीं होते हैं जिसे सांख्य द्वारा प्राप्त किया जाना है। इन दो मार्गों से अंतिम छोर तक गुजरने के उद्देश्य से जिन आध्यात्मिक एजेंसियों का आह्वान किया जाना है, वे राम और कृष्ण हैं।
178. उनके तकनीकी अंतरों की व्याख्या बाद में की जाएगी। लेकिन दोनों विधियों के बीच अंतर का एक महत्वपूर्ण बिंदु है जिसे आसानी से सुनिश्चित किया जा सकता है और समझा जा सकता है।
181. कर्म-योग का उद्देश्य व्यक्तिगत स्व, 'तुम' या 'मैं' के प्रति सांसारिक आसक्तियों के कारण होने वाली धार्मिक उन्नति की सभी बाधाओं को समाप्त करना है।
182. जब प्रगति की ये बाधाएं दूर हो जाती हैं और कर्म-योग द्वारा स्वयं (स्व) का विचार सार्वभौमिक में विलीन हो जाता है, तब सांख्य की उच्च प्रक्रिया को केवल सार्वभौमिक आत्मा (Universal Soul) से ही निपटना होता है।
183. जबकि कर्म-योग की पूरी प्रक्रिया के दौरान, दोनों के विचार संयुक्त रहते हैं।
184. इस प्रकार हम आसानी से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि रामायण की प्रक्रिया में हमें केवल किसी रूप में ब्रह्म के साथ व्यवहार करना है, लेकिन महाभारत की प्रक्रिया में, हमें 'तुम' और 'मैं' के अपरिष्कृत विचारों को नष्ट करने के लिए खुद को प्रयास करना होगा, और साथ ही ब्रह्म को भी ध्यान में रखना होगा, जो निचली प्रक्रिया के अनुकूल किसी उपयुक्त रूप में हो।
185. रामायण का मुख्य विषय इस प्रकार चरित्र में उच्च है, जिसमें केवल ब्रह्म की खोज और उसे प्राप्त करने तथा बनाए रखने के लिए सभी आवश्यक अभ्यास शामिल हैं।
186. जबकि, महाभारत में यह दोहरा है, जिसमें सार्वभौमिक आत्मा के साथ थोड़ा और 'कूटस्थ' (Kootasta) नामक व्यक्तिगत आत्मा के साथ अधिक व्यवहार करना पड़ता है, जो व्यावहारिक रूप से ब्रह्म से भिन्न नहीं है।
187. कुल ब्रह्मांड के ब्रह्मांड विज्ञान के वास्तविक अधिष्ठान (Substratum) की अवधारणा ब्रह्म है और व्यक्तिगत सत्ता का अधिष्ठान कूटस्थ है।
188. उनकी तुलना एक चित्र के पूर्ण कैनवास से की जाती है जो ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करता है और साथ ही उसी के उस विशेष हिस्से से भी जो एक व्यक्ति के चित्र द्वारा घेरा गया है।
189. दोनों बिल्कुल मूल और एक ही कैनवास को निर्दिष्ट करते हैं लेकिन केवल विस्तार में अंतर के कारण अलग पहचाने जाते हैं। दार्शनिक विश्लेषण द्वारा अंतरिक्ष (Space) के इस प्रपंचमय विचार को हटा दिए जाने पर, अधिष्ठान का अंतर समाप्त हो जाता है। तब कूटस्थ, यानी वास्तविक 'तुम' या 'मैं', बिल्कुल वास्तविक 'वह' या ब्रह्म बन जाता है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, महाभारत सीधे इस जीवात्मा से संबंधित है जो परमात्मा के साथ संयुक्त है और रामायण केवल परमात्मा से संबंधित है।
190. उपर्युक्त अंशों का विस्तार से परीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि वे अपनी व्याख्याओं में अत्यंत स्पष्ट हैं।
191. हालाँकि, वे सभी कट्टरपंथी आलोचकों की भावनाओं को सीमा से बाहर चिढ़ाने और उनकी बुद्धि को सुन्न करने के लिए निश्चित हैं, जैसे कि एक गंभीर और अप्रत्याशित प्रहार द्वारा।
192. यह डर है कि आलोचकों को स्वयं को सही साबित करने की दृष्टि से ग्रंथों की प्रामाणिकता पर सवाल उठाने और पूरे मामले को एक दूर की कौड़ी वाली कल्पना (allegory) के रूप में निंदा करने के लिए भी प्रेरित किया जा सकता है।
193. लेकिन यह फिर भी एक मूर्त तथ्य है कि ऐसे होने वाले आलोचक अपनी स्वयं की समझदार व्याख्याओं को दो पंक्तियों तक भी जारी रखने में कभी सक्षम नहीं होंगे।
194. यह वास्तव में विषय के हमारे उपचार में एक बहुत ही महत्वपूर्ण और निर्णायक बिंदु है और पाठक से सभी संभावित ध्यान और सहानुभूति की प्रार्थना की जाती है ताकि विषय के आगामी उपचार

में यहाँ बताए गए किसी भी तथ्य की व्याख्या के संबंध में अनावश्यक शंकाओं और गलतफहमियों से बचा जा सके।

195. उद्धरण १ और २ में, रामायण को सभी इतिहासों और पुराणों के वास्तविक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
196. कहा जाता है कि महाभारत रामायण का ही एक सटीक प्रतिबिंब (reflection) है।
197. रामायण के लेखक को ब्रह्मा से भिन्न नहीं कहा गया है, और महाभारत के लेखक स्वयं विष्णु हैं, व्यास केवल बाद के संकलनकर्ता हैं।
198. दोनों महाकाव्यों की सामग्री के रूप में यहाँ एक सामान्य विवरण दिया गया है। राम के इतिहास के वेश में रामायण सभी धर्मों का विवेचन करती है। जबकि महाभारत स्मृतियों और धर्म-संहिताओं का विवेचन करती है।
199. दोनों महाकाव्यों के विषय में मुख्य अंतर यह बताया गया है कि रामायण में केवल परमात्मा का विवेचन है, और महाभारत में जीवात्मा और परमात्मा दोनों का संयुक्त विवेचन है।
200. कहा जाता है कि वाल्मीकि ने भविष्यसूचक रूप से उस रामायण का वर्णन किया है जिसे विष्णु द्वारा विस्तृत रूप से क्रियान्वित किए जाने की आशा है।
201. फिर से 'कृतम्', 'चक्राय' और 'कुरु' शब्द, जो स्पष्ट रूप से महाकाव्यों की रचना को दर्शाते हैं, सीधे 'क्रिया' (action) को संदर्भित करते हैं।
202. दोनों की सामग्री के विवरण का अर्थ मनुष्य द्वारा अभिनय (acted out) किया जाना है, न कि केवल पढ़ा जाना या पुनः लिखा जाना।
203. उद्धरण ३ महाभारत की सामान्य रूपरेखा को स्पष्ट और अधिक तकनीकी उपनिषदिक भाषा में प्रस्तुत करता है।
204. ये सभी बहुत महत्वपूर्ण और सार्थक बिंदु हैं जो दोनों ग्रंथों को उनके सही आलोक में समझने के लिए आवश्यक सुराग प्रदान करते हैं, और हम इस स्तर पर उनके लिए पूर्ण स्पष्टीकरण देने के लिए यहाँ प्रतीक्षा नहीं कर सकते।
205. हालाँकि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाद की व्याख्याएँ पूरी तरह से इन्हीं पर आधारित होंगी; और हमारी दृढ़ता का सबसे अच्छा प्रमाण यह होगा कि इन सुरागों के आलोक में ग्रंथों के प्रत्येक भाग की व्याख्या पर्याप्त रूप से तर्कसंगत, सुसंगत और समझने में आसान होगी, इसके अलावा सकारात्मक रूप से बहुत मूल्यवान और उपयोगी जानकारी प्रदान करेगी।
206. जबकि, शायद यह दोहराना आवश्यक है कि आधुनिक व्याख्याएँ शायद ही कभी इनमें से किसी भी तथ्य का पालन करेंगी।
207. प्रचलित विद्वत्तापूर्ण पद्धति द्वारा न तो कोई दो सुसंगत विचार खोजे जा सकते हैं और न ही कोई तर्कसंगत, उपयोगी या उन्नत निष्कर्ष निकाला जा सकता है।
208. और फिर भी 'ब्रूट्स एक सम्माननीय व्यक्ति है'।
209. हमें विचाराधीन दोनों महाकाव्यों के उपचार के लिए दी गई परिचयात्मक व्याख्याओं में इस अध्याय के पूर्ववर्ती पैराग्राफों से संतुष्ट होना चाहिए।
210. जाँच में प्राप्त तार्किक क्रम के अनुरूप, हमें महाभारत से शुरुआत करनी होगी जो हमारी वर्तमान योग्यताओं के साथ प्रयास करने के लिए सबसे निकटतम पहुँच योग्य विषय है।
211. हम पहले ही पा चुके हैं कि हमें भारत-वर्ष के भीतर स्थान केवल अनुग्रह के मामले के रूप में दिया गया है, क्योंकि हममें से अधिकांश को हमारी धार्मिक दिवालियापन की वर्तमान स्थितियों के तहत प्रवेश का कोई विशेषाधिकार नहीं है।
212. हमें फिर से इसी तरह कलि के प्रथम चरण या 'प्रथम-पाद' में रहने का विशेषाधिकार दिया गया है, जो द्वापर युग के ठीक बाद आता है, जिसका अर्थ है कि हम कर्म-योग की बाहरी सीमा से दूर नहीं रखे गए हैं।
213. हमारे प्राचीन और श्रद्धेय ऋषियों की धार्मिक रूप से झुकी हुई आधुनिक संतान को उनके जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में एक अवसर दिया जाता है कि वे उनके द्वारा कृपया प्रदान किए गए धार्मिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने का प्रयास करें।
214. वास्तव में यदि हम चाहें तो हमें महाभारत का 'अभिनय' करने (कार्य रूप में परिणत करने) की अनुमति है।

215. सामान्य रूप से मानव जाति हमेशा 'भारत' या नाटक का अभिनय कर रही है जैसा कि इसका सामान्य अर्थ है।
216. यह विचार कि दुनिया एक मंच है और प्रत्येक व्यक्ति इसमें एक अभिनेता है, सभी सभ्य देशों के लिए एक परिचित और सामान्य विचार है।
217. लेकिन इस तुच्छ और निराशाजनक नाटक में हमारे पात्रों का प्रदर्शन कोई धार्मिक श्रेय सुरक्षित नहीं कर सकता।
218. बुद्धिमान और विचारशील लोग जल्द ही ऊब जाते हैं और दिन-प्रतिदिन बिल्कुल वैसी ही और लाभहीन प्रक्रियाओं की निरंतर पुनरावृत्ति पर शर्मिंदा महसूस करते हैं।
219. "दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है, जो अपने साथ अपनी नीरस दिनचर्या लेकर आते हैं, जिससे विवेकी व्यक्ति को पूरी तरह से विरक्ति हो जाती है"।

अध्याय IV: सूर्य और सोम वंश के अगले 45 पैराग्राफ (221 से 265) का हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है:

221. शुद्ध मन का क्षेत्र होने के कारण, इसे चंद्रमा के निवास स्थान के रूप में वर्णित किया गया है।
222. समंत-पंचक शब्द, जैसा कि स्वयं महाभारत में समझाया गया है, परशुराम द्वारा खोदे गए पाँच रक्त-कुण्डों के पास के स्थान को संदर्भित करता है।
223. त्रेता और द्वापर युग के संधि काल में दुनिया के सभी क्षत्रियों का विनाश करने के बाद, उन्होंने इन पाँच कुंडों को उनके रक्त से भर दिया और जिससे उन्होंने अपने पितरों या मृत पूर्वजों को तर्पण अर्पित किया।
224. अब यह समझने में शायद ही कोई कठिनाई हो कि ऊपर बताए गए पाँच चक्रों में प्रयुक्त सभी योगिक प्रक्रियाएँ, गरीब सांसारिक मनुष्य पर हावी होने वाले भौतिकता के असंख्य विचारों के विनाश के लिए, उनकी भारी कुल्हाड़ी के महान बल के प्रयोग के रूप में वर्णित हैं।
225. परशुराम के अवतार का महत्व इस प्रकार वास्तव में केवल इसी चरण तक विस्तारित है, लेकिन सोम-वंश में थोड़ा आगे बढ़ते हुए, त्रेता-युग के सूर्य-वंश में पूरी तरह से विलुप्त हो जाता है, जब वे श्री-राम द्वारा पूरी तरह से पराजित हो जाते हैं।
226. सुप्रसिद्ध समानार्थी नाम, हस्तिनापुर की व्याख्या यहाँ आसानी से की जा सकती है।
227. 'हस्ति' का अर्थ हाथी है और 'ना' का अर्थ नहीं। वह स्थान जहाँ हाथी का विनाश होता है, हस्तिनापुर है।
228. हाथी को आमतौर पर ग्रंथों में उस पाशविक बल को चित्रित करने के लिए चुना जाता है जिसके साथ सांसारिक इच्छाएँ मनुष्य को उसके धर्म के मार्ग से बाहर खींचती हैं और उसे अथाह रसातल में फँक देती हैं।
229. "मानवीय इच्छा को एक हाथी के रूप में वर्णित किया गया है, जिसके कर्मा के दो दांत हैं और पुरानी वासनाओं से मदमस्त है, जो भौतिक शरीर के जंगल में घूमता है और मन की गुफा में खुद को छिपा लेता है और साथ ही सांसारिक मामलों के क्षेत्र में युद्ध लड़ता है। यह प्रत्येक विचारहीन व्यक्ति को अपने अधीन कर लेता है और उसे हमेशा संकट में रखता है।"
230. हमारा कार्यक्षेत्र इस खतरनाक हाथी के कार्यक्षेत्र से बिल्कुल अलग है।
231. युद्ध हस्तिनापुर में लड़ा जाना है जहाँ यह विशाल हाथी खुद को नष्ट पाता है।
232. कुरुओं और पांडवों को समंत-पंचक में अपनी तलवारों और गदाओं को मापना है और अपने तीरों का आदान-प्रदान करना है, जो कि छठा युद्ध-क्षेत्र है, जिसमें पहले पाँच युद्ध जीते जाने हैं और मारे गए शत्रुओं का रक्त हमारे वास्तविक पूर्वजों, मूल पितरों को तर्पण के रूप में अर्पित किया जाना है।
233. यह कुरु-क्षेत्र की पवित्र भूमि है जो विशाल गंगा और यमुना के बीच विस्तृत और स्वतंत्र रूप से स्थित है।
234. मनुष्य को कलि के प्रथम चरण या प्रथम-पाद से आगे बढ़ना होगा, जो अवधि प्राचीन ऋषियों द्वारा आधुनिक काल के धार्मिक हिंदुओं के लिए निर्धारित की गई है, जब तक कि वह द्वापर की सीमा तक नहीं पहुँच जाता, ताकि वह कुरु-क्षेत्र के पवित्र युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश कर सके और महाभारत में वर्णित कुरुओं और पांडवों के बीच युद्ध में भाग ले सके।
235. कहा जाता है कि उस स्थान पर दोनों पक्षों की ओर से 18-अक्षौहिणी या रेजिमेंटल सेनाएँ एकत्रित हुईं और वे सभी परस्पर नष्ट हो गईं।

236. सेनाओं का विवरण और उनका संख्यात्मक विवरण नीचे दिया गया है।
237. एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल सैनिक और तीन घोड़े मिलकर एक 'पति' बनाते हैं, 3 पतियाँ एक सेना-मुख बनाती हैं, वही 3 बार मिलकर 1 गुल्म, 3 गुल्म मिलकर 1 गण, 3 गण मिलकर 1 वाहिनी, 3 वाहिनी मिलकर 1 पृतना, 3 पृतना मिलकर 1 चमू, 3 चमू मिलकर 1 अनीकिनी और 10 अनीकिनी मिलकर 1 अक्षौहिणी के बराबर होती हैं।
238. यहाँ दिया गया एक पति का विवरण, जिसके अंतिम को छोड़कर अन्य सभी 3 के गुणक हैं, स्पष्ट रूप से दिखाएगा कि यह वर्णन किसी वास्तविक सेना को संदर्भित नहीं करता है।
239. अक्षौहिणी शब्द का शाब्दिक अर्थ संवेदनाओं का जमावड़ा या समूह है और कुल संख्या 18 संभवतः 8 प्रकृतियों और 10 इंद्रियों को दर्शाती है।
240. इन सभी को पवित्र युद्ध में पूरी तरह से नष्ट किया जाना आवश्यक है।
241. सुविधाजनक संदर्भ के लिए महाभारत में वर्णित महत्वपूर्ण दृश्यों से निकटता से संबंधित कुछ और भौगोलिक विवरणों पर फिर से ध्यान देना यहाँ अनुचित नहीं समझा जा सकता है।
242. उदाहरण के लिए, मथुरा और द्वारका नामक शहर, वृंदावन का जंगल, गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी आदि विशेष रूप से श्री-कृष्ण से जुड़े हुए हैं।
243. कम महत्व के विषयों को इस निबंध के क्रम में आने पर देखा जा सकता है।
244. मथुरा, जो श्री-कृष्ण का सबसे महत्वपूर्ण जन्मस्थान है, उसे 1000 पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में वर्णित किया गया है, वह स्थान जहाँ सभी निर्मित वस्तुओं का सार निकाला जाता है और उनके आदिकालीन कारण के मूल रूप में कम किया जाता है।
245. इस प्रकार यह कुरु-क्षेत्र से बहुत दूर हृदय के हजार पंखुड़ियों वाले कमल में स्थित है।
246. द्वारका वह स्थान है जिसके चारों ओर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए विभिन्न मार्ग खुले हैं।
247. उद्धृत अंश स्पष्ट रूप से समझाता है कि प्रकृतियों को 10 गाँवों, 10 जंगलों और 1 पर्वत का प्रतिनिधित्व करने वाला बताया गया है, जो एक-एक योजना की दूरी पर स्थित हैं।
248. इंद्रियों से बने 10 गाँव हैं: गोकुल, वृषभ, नंद, भांडीर, मथुरा, व्रज, यमुना, मान्या; श्रेयस्क और गोपिका।
249. पाँच तत्वों से बने 10 जंगल हैं: वृंदावन, गोप-वन, बहुला-वन, मधु-संग, कुंज-वन, वन, दधि-वन, महाक्रीड़ा-वन, रम्य-वन और वेणुपद्म-वन।
250. गोवर्धन पर्वत शुद्ध मन की प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है, शब्द का शाब्दिक अर्थ है, वह जो प्रकाश या 'गो' को बढ़ाता या विकसित करता है।
251. वृंदावन स्वयं शुद्ध प्रकाश से उत्पन्न एक दिव्य वन है, जो ब्रह्मांड या मनुष्य की ब्रह्मांडीय अवधारणा से ऊपर स्थित है, और कालिंदी नदी के तट पर है जो सुषुम्ना नाड़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके भीतर तत्व और देव अपने सूक्ष्म रूपों में निवास करते हैं।
252. यहाँ वर्णित स्थान शुद्ध प्रकाश से बना है और मर्त्य आँखों के लिए अदृश्य है।
253. मथुरा और द्वारका के निवासियों, स्त्री और पुरुष दोनों को स्वयं देवों से अधिक सम्माननीय बताया गया है, और अन्य मनुष्यों के विपरीत, वे सभी चार हाथों से संपन्न हैं।
254. ग्रंथों में उल्लिखित नर्मदा नदी इड़ा-नाड़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जो शंकर की शक्ति है जिसकी सहायता संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए ली जानी चाहिए।
255. महान गंगा का जल विष्णु, शुद्ध-विद्या और शुद्ध-धर्म का प्रतिनिधित्व करता है, और नदी स्वयं शंकर द्वारा योग के उपनिषदों के सार से निर्मित की गई है।
15. हमने पिछले पैराग्राफ में महाभारत के विवेचन से सीधे जुड़े आवश्यक भौगोलिक विवरणों की जाँच की है और कमोबेश समझ लिया है कि कुरुक्षेत्र, मथुरा, द्वारका, वृंदावन, गोवर्धन, यमुना, नर्मदा, गंगा आदि द्वारा क्या निरूपित किया जाता है।
256. ग्रंथों में दी गई ऐसी स्पष्ट और सुस्पष्ट परिभाषाओं के बावजूद, केवल यह खेद ही जताया जा सकता है कि हमारे वर्तमान पतन के कारण, पूरे ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दों के केवल तकनीकी अर्थों को आधुनिक युग की नई खोजों के रूप में समझाने की आवश्यकता दुर्भाग्य से उत्पन्न हुई है।
257. जब स्वयं शब्दों की परिभाषाओं की व्याख्याओं का ऐसा दुखद हथ्र है, तो पवित्र ग्रंथों की मूल्यवान सामग्री के वर्तमान प्रतिपादनों की शुद्धता पर टिप्पणियाँ निश्चित रूप से अनावश्यक हैं।
258. विषय की वर्तमान पूर्ण अज्ञानता का कारण खोजना कठिन नहीं है।

259. अब तक हम पूरी तरह आश्वस्त हो चुके हैं कि महाभारत कर्म-योग का विवेचन करता है और इसकी प्राप्ति के लिए कार्य करने की प्रक्रियाओं का विवरण देता है।
260. इस प्रकार यह ग्रंथ वास्तव में हमेशा केवल राज-ऋषियों को ही ज्ञात था और पंडित वर्ग को कभी नहीं, जिनका क्षेत्र संस्कृत साहित्य के अध्ययन तक ही सीमित है।
261. किसी भी लंबी अवधि तक राज-ऋषियों की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से इसके ज्ञान की हानि होनी चाहिए।
262. जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है: "योग राज-ऋषियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञात था, जो अज्ञानता के एक लंबे अंतराल के कारण अब दुनिया से पूरी तरह खो गया है। इसलिए वही पुरातन योग अब तुम्हें उपदेशित किया जा रहा है।"
263. हम इस स्तर पर ऊपर प्रयुक्त 'राज-ऋषि' शब्द के अनुप्रयोग को गलत समझने का जोखिम बिल्कुल नहीं उठा सकते।
264. हमने अध्याय III, खंड III में इसके अर्थ की पूरी तरह से छानबीन की है
266. यह एक उपनिषद् है जिसे आधुनिक व्याख्याकारों को अपने पेशेवर हित में शुरू से ही 'कालभ्रम' (anachronism) कहकर निंदा करनी चाहिए। अन्यथा उनका पुरातत्व शास्त्र धराशायी हो जाएगा। उनके लिए यह उद्धरण उसी तरह अर्थहीन है जैसे किसी अज्ञात विषय की हर चीज होती है।
267. वर्तमान व्याख्याएं और आलोचनाएं इसलिए उतनी ही मूल्यवान हैं जितनी अंकगणित में बिना किसी संख्या के शून्य; और फिर भी उनके मूल्य को न्यायसंगत और स्थापित करने के लिए किए गए प्रयास वास्तव में आश्चर्यजनक हैं।
268. "उन्हें गोपाल कहा जाता है जिसका प्रतिनिधित्व 'ओम्' द्वारा किया जाता है, क्योंकि वे 'गोपों' को सृष्टि के अंत तक आत्मा की ओर ले जाते हैं। यह ब्रह्म शुद्ध अस्तित्व, शुद्ध प्रकाश और अद्वितीय है। माया के साथ अपने संयोग से इसने स्वयं को चार भागों में विभाजित कर लिया। 'अ' अक्षर 'बल-राम' कहे जाने वाले विश्व की ओर संकेत करता है; 'उ' अक्षर 'प्रद्युम्न' कहे जाने वाले तेजस की ओर संकेत करता है; 'म' अक्षर 'अनिरुद्ध' कहे जाने वाले प्राज्ञ को दर्शाता है, और अर्ध-मात्रा कृष्ण का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें विश्व विश्राम करता है।"
269. "जगत की निर्मात्री मूलप्रकृति को रुक्मिणी कहा जाता है। वह वेदों से उत्पन्न हुई है जिन्हें गोपियों के रूप में दर्शाया गया है। वह प्रणव के रूप में ज्ञान से जुड़ी है, और इसलिए दार्शनिकों द्वारा उसे प्रकृति कहा गया है। आठ पंखुड़ियों वाला हृदय-कमल मथुरा में स्थित है, और वहां विराजमान मेरा ध्यान करने से मोक्ष की प्राप्ति होगी।"
270. "दिव्य और उज्ज्वल ध्वज-दंड मेरा है। छत्र ब्रह्मलोक है और उसके ऊपर आधार या सहारा है। 'श्रीवत्स' कहे जाने वाले चिह्न को दार्शनिकों द्वारा प्रेम और स्नेह के सूचक के रूप में समझाया गया है। 'कौस्तुभ' नामक रत्न सूर्य, चंद्रमा, अग्नि और वाक् या वेदों के प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। सत्त्व, रज, तम और अहंकार चार हाथों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शंख पाँच सूक्ष्म तत्वों का प्रतीक है। बालक के रूप में रूप मन की प्रकृति की ओर संकेत करता है। 'शार्ङ्ग' मूल माया का प्रतिनिधित्व करता है।"
271. "हाथ में कमल 'विश्व' को संदर्भित करता है। दिव्य कंगन धर्म, अर्थ और काम को दर्शाते हैं। गर्दन माया द्वारा लिपटी हुई निर्गुण है, और हे ब्रह्मन्! वह माला आपके मानस पुत्रों से बनी है। मुकुट सात्त्विक कूटस्थ है। चमकते कुंडल मृत्यु से परे के क्षेत्र को दर्शाते हैं। जो प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करता है वह मुक्ति प्राप्त करेगा।"
272. भगवान के कृष्ण के रूप में ध्यान के लिए निर्धारित इन ठोस वस्तुओं का वास्तविक महत्व यहाँ स्वयं ग्रंथों में स्पष्ट रूप से समझाया गया है, इसे आधुनिक व्याख्याकारों की सनक और मर्जी पर नहीं छोड़ा गया है। सामान्य हिंदू जनता वर्तमान में केवल इस गलत विश्वास में है कि पंडित वर्ग ने ग्रंथों का अध्ययन किया है।
273. "नंद दिव्य आनंद को और यशोदा मुक्ति की स्वामिनी या अभेद्य माया को संदर्भित करती हैं, जो तीन प्रकार की हैं - सत्त्व, रज और तम। रुद्र सात्त्विक हैं, ब्रह्मा और भक्त राजसिक हैं और दैत्य तामसिक हैं। देवकी वेदों में प्रसिद्ध ब्रह्मा की पुत्री का प्रतिनिधित्व करती हैं। वसुदेव स्वयं वेदों को संदर्भित करते हैं। कृष्ण और राम वेदों के विषय की ओर संकेत करते हैं।"
274. "गोपियाँ और गाएँ वेदों के सूक्तों (भजनों) का प्रतिनिधित्व करती हैं, और ब्रह्मा उनका आधार हैं। वंश (बांसुरी) रुद्र है और उसका नाद इंद्र है। गौ देव है। गोकुल वैकुण्ठ का वन है और वृक्ष भक्तों की ओर

- संकेत करते हैं। दैत्य लोभ, क्रोध आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। कलि निंदनीय है। कृष्ण स्वयं शाश्वत ब्रह्म हैं, जो माया के रूप में गोप के वेश में प्रकट होते हैं। शेष या अनंत ही बल-राम हैं। १६००८ गोपियाँ भी ब्रह्म के ही रूप हैं जो वेदों की विभिन्न ऋचाओं या सूक्तों का प्रतिनिधित्व करती हैं।"
275. "चाणूर-मल्ल घृणा है, मुष्टिक ईर्ष्या है, कुवल्यापीड गर्व है, बक पक्षी अहंकार है। माता रोहिणी सहानुभूति हैं और सत्यभामा धरा अर्थात् पृथ्वी या आधार हैं। अघासुर महान रोग है और कंस राजा कलि है। मित्र और सुदामा 'शम' नामक गुण का प्रतिनिधित्व करते हैं; सत्य, अक्रूर और उद्धव 'दम' को दर्शाते हैं। शंख विष्णु और लक्ष्मी के रूपों की ओर संकेत करता है, जो बादलों की गर्जना के साथ क्षीर सागर से उत्पन्न हुआ है।"
276. "कृष्ण का दूध के बर्तनों को तोड़ने का बाल-लीला खेल, दुष्टों के विनाश और धार्मिकों की रक्षा के उद्देश्य से क्षीर सागर में उनके खेल की ओर संकेत करता है। सुदर्शन चक्र निर्माता के रूप में ब्रह्मा का प्रतिनिधित्व करता है। जयंती वायु का प्रतिनिधित्व करती है और पंखा धर्म को दर्शाता है। चमकती तलवार महेश्वर है। ओखली कश्यप है और रस्सी माता अदिति है। चक्र और शंख 'सिद्धि' और 'बिंदु' के प्रतीक हैं।
277. "गदा शत्रुओं के विनाश के लिए समय (काल) की शक्ति को दर्शाती है। धनुष माया का प्रतिनिधित्व करता है। शरद ऋतु भोग (आनंद) को दर्शाती है। हाथ में कमल जगत के बीज का प्रतिनिधित्व करता है। वटभांडीर गरुड़ का प्रतिनिधित्व करता है और सुदामा नारद हैं। वृंदा भक्ति, धार्मिक क्रिया और प्रबुद्ध बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती है। भगवान ऊपर सूचीबद्ध मंदों से बने हैं और उनसे अलग नहीं हैं। स्वर्ग के निवासियों के उपयोग के लिए पूरे वैकुंठ को इस प्रकार भूमि पर लाया गया है।"
278. "जो व्यक्ति इस उपनिषद के अर्थ को सही ढंग से समझता है, वह तीर्थों का फल प्राप्त करता है और अपने नश्वर शरीर से मुक्ति प्राप्त करता है।"
279. यहाँ उद्धरण के शब्दों को दोहराना समय की सरासर बर्बादी होगी। उपयोग किए गए प्रत्येक तकनीकी शब्द को उतनी ही स्पष्ट रूप से समझाया गया है जितना कि कोई भी मानवीय भाषा प्रदान कर सकती है। उद्धृत उपनिषद १०८ उपनिषदों के सुप्रसिद्ध समूह में से एक है जो धार्मिक हिंदुओं के लिए अत्यंत पवित्र है।
280. यहाँ 'भूमि' इस भौतिक पृथ्वी को संदर्भित नहीं करती है, बल्कि अध्याय III में वर्णित सप्त-भूमिकाओं की ओर संकेत करती है। स्वर्ग को भी उपनिषदों में 'सत्' या आत्मा के निरंतर ध्यान के रूप में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।
281. पंडित निश्चित रूप से उपनिषद को उस तरह से नहीं समझते जैसा कि स्वयं ग्रंथ द्वारा अपेक्षित है। वह यहाँ वर्णित स्वर्ग के निवासी नहीं हैं और उनका निर्दिष्ट भूमि पर कोई दावा नहीं है। इसलिए उन्हें कृष्ण और यहाँ वर्णित दिव्य सामग्रियों का नाम व्यर्थ में नहीं लेना चाहिए।
282. इसके अलावा, वह इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं कि 'इतिहास खुद को दोहराता है'। वह ईमानदारी से और गंभीरता से उम्मीद करते हैं कि उनके परिवार का एक पूर्वज, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह बहरा और अंधा था, कुछ सौ साल बाद उनके अपने घर में ठीक उसी रूप में पैदा होगा।
283. वह इसी तरह मानते हैं कि श्री-कृष्ण के अलावा, क्रोध, ईर्ष्या, शम और दम जैसे मानवीय गुण; कलि और द्वापर जैसे कालखंड; तलवार, गदा, शंख और चक्र जैसे उपकरण; और यहाँ तक कि वैदिक सूक्त भी, ऊपरी भारत के मथुरा में मनुष्यों और जानवरों के रूप में अवतार लेते हैं। वह पूरी तरह से पागल और अत्यंत घुसपैठिए हैं। यही पूरे मामले का सार है।
284. "व्यास की कृपा से, मैंने अर्जुन को संबोधित योगेश्वर कृष्ण की शिक्षाओं से सीधे इस पवित्र और गुप्त योग को सीखा है। मुझे यकीन है कि जब योगेश्वर कृष्ण युद्ध के लिए तैयार अर्जुन के साथ संयुक्त होते हैं, तो बुद्धि, सफलता और विभूति या योग शक्ति, स्थिर रूप से निर्देशित होगी।"
285. श्री-कृष्ण के लिए निरंतर प्रयुक्त 'योगेश्वर' शब्द अपने विशेष उद्देश्य या अर्थ के बिना नहीं है। सभी धार्मिक ग्रंथों में कृष्ण का ठीक यही तकनीकी महत्व है। वे सांख्य या ज्ञान-योग से भिन्न कर्म-योग के स्वामी या आध्यात्मिक आधार हैं।
286. वह (पंडित) हालांकि भूल जाते हैं या बल्कि नहीं जानते कि ज्ञान और मोक्ष उनके जैसे प्राणियों के लिए नहीं हैं।
287. "यह समझें कि गोपियाँ वेदों का प्रतिनिधित्व करती हैं और उनकी पुत्रियाँ सूक्तों का। वे तपस्या से भरी दिव्य कन्याएँ हैं और मोक्ष के लिए कार्य कर रही हैं। गोप दिव्य आनंद के रूप में मुनियों का

प्रतिनिधित्व करते हैं। जंगल नंदन है जो सभी पापों को नष्ट कर देता है। कोयल और अन्य पक्षी सिद्धों, साध्यों और गंधर्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैं काम-कला या रचनात्मक शक्ति से संपन्न वसुदेव हूँ।"

288. "राधिका नामक देवी ललिता पुरुष कृष्ण का रूप हैं। 'शौरी' का अर्थ है शरीर रहित। यह शाश्वत आनंद का रूप और सूक्ष्म तत्वों का आधार है। ब्रह्म का रूप इस प्रकार नाटकीय रूप से निर्धारित किया गया है। कृष्ण को उनके तीव्र प्रकाश के कारण नहीं देखा जा सकता। उनका शरीर साधारण मनुष्यों की तरह मांस और हड्डी का नहीं बना है। उनके केवल दो हाथ हैं, चार कभी नहीं। वे एकमात्र पुरुष हैं; ब्रह्मा से लेकर नीचे तक सब कुछ स्त्रीलिंग है। राधा और वृंदावनेश्वर मूल प्रकृति और पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोविंद कभी वृंदावन नहीं छोड़ते।"
289. उद्धरण हमें यह समझाने के साथ शुरू होता है कि गोपियाँ वेदों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कृष्ण और राधा के बारे में कहा गया है कि वे भौतिक रूपों के बिना पुरुष और प्रकृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृष्ण का कोई मांसल शरीर नहीं है और वे अपनी चमक के कारण अदृश्य हैं। ग्रंथ में ऐसा ही वर्णन दिया गया है, लेकिन हमारे श्रद्धा पंडित इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं।
290. वह तब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक वे पवित्र सामग्री से कुछ दुष्टतापूर्ण निर्माण नहीं कर लेते। उन्हें इन गोपियों को मुक्त महिलाओं के समूह के रूप में और कृष्ण को उनके प्रेमी के रूप में चित्रित करना ही है। कहानी तब तक स्वादिष्ट नहीं लगती जब तक उसे इस तरह से दूषित न किया जाए।
291. "शाश्वत राधा-कृष्ण अविनाशी ब्रह्म से एक ही आकृति के रूप में उत्पन्न हुए। एक हजार युगों की तपस्या के बाद, इसने स्वयं को राधा और कृष्ण में विभाजित कर लिया। उन्होंने अलग-अलग एक हजार युगों तक तपस्या की और दोनों के शरीर से एक प्रकाश निकला। उसी प्रकाश से दिव्य वृंदावन की उत्पत्ति हुई। दिव्य नाटक के लिए कृष्ण के शरीर से तीन करोड़ गोप उत्पन्न हुए; श्रीदामा आदि सात्विक, अर्जुन राजसिक और कंस तामसिक थे।"
292. "इसी तरह राधा के शरीर से विभिन्न प्रकार के खेलों के लिए तीन करोड़ गोपियाँ उत्पन्न हुईं, ललिता आदि सात्विक, कुब्जा आदि राजसिक और पूतना आदि तामसिक थीं। उनका संयुक्त खेल एक हजार युगों तक चला। फिर उन्हें अंदर खींच लिया गया; और कृष्ण तथा राधा ने फिर से तपस्या की। कृष्ण को दो हिस्सों में विभाजित किया गया, एक आधा हिस्सा कृष्ण और दूसरा आधा हिस्सा हजार सिर, हजार आंखें और हजार पैरों वाला विराट पुरुष था।"
293. "इसी तरह राधा विभाजित हुई, एक आधा हिस्सा राधा और दूसरा आधा हिस्सा एक सिर, तीन आंखें, दो पैर और एक हजार हाथों वाली देवी थी। पुरुष और प्रकृति ने इस प्रकार दिव्य वृंदावन में एक हजार युगों तक अपनी तपस्या जारी रखी, और बाद में जब वे एक साथ संयुक्त हुए, तो उनके शरीर के प्रत्येक रोम से करोड़ों ब्रह्मांड उत्पन्न हुए। यह ब्रह्मांड हृदय के ऊपर के बाल से है, और ब्रह्मा इसी से उत्पन्न हुए, एक कमल पर विराजमान जो पद्म-सरोवर से निकला था जिसे पुष्कर-क्षेत्र के रूप में जाना जाता है।"
294. ब्रह्मा ने स्वयं को चार सिरों वाले मानवीय रूप में पाकर चकित हुए। फिर वे कमल-नाल के माध्यम से कई दिव्य शताब्दियों तक आगे बढ़े और उसका अंत देखे बिना लौट आए। माया से अभिभूत होकर वे जोर-जोर से रोने लगे और उस रोदन से रुद्र उनके सांत्वना के लिए उत्पन्न हुए और उन्हें सूचित किया कि उनका ईश्वर उनके अपने हृदय में स्थित है।
295. ब्रह्मा ने तब अपने हृदय में समाधि ली और हरि सैकड़ों दिव्य वर्षों के बाद प्रकट हुए और इस प्रकार बोले: "यह एक हजार योजनों वाली कर्म-भूमि है जो जीवों का निर्माण और विनाश करती है। यह उत्तर में हिमाद्रि, पूर्व में महोदधि, पश्चिम में रत्नाकर और दक्षिण में वेदवाब्धि से घिरी हुई है। यह भूमि शाश्वत है, इसके भीतर शाश्वत कमल है और सभी लोक इसके ऊपर और नीचे हैं। यह कर्म-भूमि वेदों का प्रतिनिधित्व करती है जिसे 'गौ' भी कहा जाता है।"
296. "वह जो इस गाय या 'गो' की रक्षा करता है वह 'गोप' है, और रक्षा की शक्ति भी वही है। हरि की गोपियाँ द्वारा पूजा की जाती है। वहाँ करोड़ों-करोड़ गोप हैं, जो हरि की कलाएँ या महिमाएँ हैं; और ब्रह्मांडों की एक समान संख्या भी है जिन्हें गोप कहा जाता है। उल्लिखित मेरु और इलावृत जैसे खंड वास्तव में अस्तित्व में नहीं हैं।"
297. इन सबके मेल-जोल से और उनके कार्यों से एक हजार युगों तक राधा और कृष्ण का दिव्य नाटक बनता है। कर्म-भूमि वेदों और गौ का प्रतिनिधित्व करती है और जो वेदों या 'गो' की देखभाल करते हैं,

- वे गोप हैं। इसी कर्म-भूमि के मध्य स्थित कमल के भीतर से ब्रह्मा का जन्म हुआ था। दिव्य वृंदावन उस प्रकाश पुंज का प्रतिनिधित्व करता है जो राधा और कृष्ण से निकला था।
298. पंडित इस शाश्वत और पवित्र कर्म-भूमि को भारतीय प्रायद्वीप का प्रतिनिधित्व करने वाली और दिव्य प्रकाश के पुंज को भारत के एक छोटे से जंगल या शहर के रूप में कैसे मान लेते हैं? आधुनिक व्याख्याकारों और आलोचकों के लिए, जिन्हें तकनीकी विषय का जरा सा भी अंदाजा नहीं है, यह पूरा विवरण एक कल्पित कहानी से भी बदतर है।
299. "कृष्ण नाम की व्याख्या निम्नलिखित तरीकों से की गई है। 1) 'कृषि' का अर्थ है कुल और 'ण' आत्मा है। वे सभी की आत्मा हैं। 2) 'कृषि' का अर्थ है कुल और 'ण' का अर्थ है आदि। वे मूल पुरुष हैं। वैकुंठ में अपने आंशिक अवतार में उनके चार हाथ हैं। 3) 'कृषि' का अर्थ है भक्ति और 'ण' भक्त को संदर्भित करता है। 4) 'कृषि' का अर्थ है कुल और 'ण' कारण को संदर्भित करता है।"
300. "वे मूल कारण हैं। बड़ी संख्या में ब्रह्माओं के चले जाने के बाद भी वे बने रहते हैं और वे मूल निर्माता हैं।"
301. "'कृषि' का अर्थ है स्थिरता, 'ण' भक्ति को और 'अ' प्राप्ति को संदर्भित करता है। 7) 'कृषि' का अर्थ है निर्वाण, 'ण' मुक्ति को संदर्भित करता है और 'अ' प्रदान करने को दर्शाता है। 8) 'कृषि' का अर्थ है महान, 'ण' भक्ति को संदर्भित करता है और 'अ' प्रदान करने को दर्शाता है। राधा पाँच प्राणों और असीम आनंद के रूप में पाँचवीं देवी हैं। वे गो-लोक में रहने वाली गोपियों की स्वामिनी हैं।
302. "'रा' विष्णु को दर्शाता है जिनके रोमों में विश्व और सृजित वस्तुएं निवास करती हैं। 'धा' आधार या माता को संदर्भित करता है। इसलिए हरि और बुद्धिमान लोगों ने उन्हें राधा के नाम से पुकारा। प्रलय या पूर्ण विनाश के समय, प्रकाश का एक बड़ा पुंज निकला। तीन सुंदर लोक इस प्रकाश के भीतर हैं। गो-लोक उनके ऊपर है।"
303. "लय के दौरान, यह अकेले कृष्ण के साथ रहता है और सृष्टि के समय गोप और गोपियाँ प्रकट होते हैं। इसके नीचे, इसके दाईं और बाईं ओर कोटि योजनों के विस्तार वाले वैकुंठ और शिव-लोक हैं। सृष्टि के समय, वैकुंठ लक्ष्मी और नारायण के साथ, और शिव-लोक शिव और उनके अनुचरों के साथ पुनः प्रकट होता है। गोलोक के भीतर एक उज्ज्वल और सुखद प्रकाश है जिसे योगी ध्यान करते हैं।"
304. "कंस पाप, बाधा, रोग, शोक और असुर को संदर्भित करता है। इन सबका विनाशक और शत्रु कंसारि है। राधा, सरस्वती, वसुंधरा और गंगा महा-लक्ष्मी के रूप हैं। उनके स्वामी माधव हैं। बारह गोपाल श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, सुबल, सप्रश्व, सुभंग, सुंदर, चंद्रभान, सूर्यभान, वसुभान और रत्नभान हैं। श्री-कृष्ण और बल-देव को मिलाकर चौदह गोपाल हैं।"
305. "हरि ने देवकी के हृदय-कमल से अवतार लिया। मथुरा तब पूरी तरह से शांत थी और वर्षा हो रही थी। रात घने अंधेरे से भर गई थी। यह आधी रात का समय था जब अर्धचंद्र उदय हुआ, अष्टमी और रोहिणी के दिन सात मुहूर्तों के बाद। सभी भाग्यशाली ग्रह उच्च थे। उस समय को जयंती-योग के रूप में जाना जाता था। यह भाग्यशाली क्षण मनुष्य के लिए अज्ञात है और वेदों द्वारा भी अज्ञेय है।"
306. पिछला उद्धरण विस्तृत और महत्वपूर्ण है। यह योग के विषय पर तकनीकी निर्देशों से भरा है। विदेशी आलोचक जो स्पष्ट रूप से गंभीर हैं, केवल सही जानकारी की कमी के कारण गलती पर हैं।
307. लेकिन हमारे स्वदेशी नकलची की आलोचनाएँ, जो अपनी अज्ञानता को छिपाते हुए अपने पूर्वाग्रह को प्रदर्शित करती हैं, उसे केवल अधिक बदनामी की ओर ले जाती हैं। वह पश्चिमी सभ्यता का एक गुमराह उत्पाद है, जो इस झूठी धारणा के तहत काम कर रहा है कि आत्म-गिरावट उसके विदेशी संरक्षक को खुश करेगी।
308. इन दो प्रकार के आलोचकों को अभी के लिए छोड़ते हुए, हमें इस संबंध में केवल अपने श्रद्धेय पंडित से निपटना है। वे उन पवित्र पुराणों का अनादर नहीं कर सकते जिनसे उपरोक्त अंश उद्धृत किए गए हैं। उन्हें पहले यह याद रखना चाहिए कि 'तीन लोक' इस पृथ्वी और इसके ऊपर के आकाश को संदर्भित नहीं करते हैं। वे प्रलय के अंधेरे से उत्पन्न प्रकाश पुंज के भीतर स्थित किसी चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं।
309. इस विवरण का वास्तविक अर्थ बहुत दूर नहीं है। जब भौतिक समृद्धि के लिए मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, तब ज्ञान का प्रकाश चमकने लगेगा। यह वह चरण है जिस पर सच्चा धर्म शुरू होता है। राधा और कृष्ण की लीला लोकों में स्वयं मनुष्य द्वारा की जानी है।
310. "लोकों को आशीर्वाद देने और धर्म की स्थापना के उद्देश्य से, विष्णु, जो निर्माता, प्रभु और सभी के पितामह हैं, ने वसुदेव और देवकी की संतान के रूप में अंधक-वृष्णि के परिवार में अवतार लिया।"

अध्याय IV: सूर्य और सोम वंश के अगले 45 पैराग्राफ (311 से 355) का हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है:

311. ऊपर उद्धृत अनगिनत अंश प्रचुरता से यह सिद्ध करते हैं कि श्री-कृष्ण प्राचीन इतिहास के किसी मृत सम्राट, बच्चों की कहानी के किसी मजेदार पात्र, या किसी कल्पनाशील कवि की रूपक रचना का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, बल्कि वे निस्संदेह ईश्वर की उस प्रत्यक्ष और विशिष्ट महिमा का संकेत देते हैं जो मनुष्य के उच्चतर जीवन से सीधे संबंधित है और उसे उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जाती है।
312. मनुष्य के विनाश से बचने और वास्तविक समृद्धि प्राप्त करने के लिए श्री-कृष्ण के आशीर्वाद का आह्वान करना और उसे कठोर प्रयासों द्वारा सुरक्षित करना आवश्यक है। श्री-कृष्ण योग के स्वामी और गुरु हैं, और अर्जुन (श्वेत या सात्विक) उनका योग्य शिष्य है जो उनके दिव्य निर्देशों के पूर्ण पालन में कार्य के लिए सदैव तत्पर रहता है।
313. जैसा कि उद्धरणों से आसानी से समझा जा सकता है, श्री-कृष्ण के जन्म की प्रकृति विशेष ध्यान देने योग्य है।
314. भगवान के बारे में कहा गया है कि वे देवकी और वसुदेव के हृदय में प्रकट हुए, जिन्हें स्पष्ट रूप से क्रमशः ज्ञान या सरस्वती और चार वेदों के प्रतिनिधित्व के रूप में समझाया गया है।
315. कृष्ण, गोपाल, कंसारि और राधा जैसे शब्दों के विभिन्न व्युत्पन्न अर्थ विशेष ध्यान देने योग्य हैं।
316. लेकिन उद्धरण 7 में कृष्ण और राधा की परिभाषाओं में कुछ तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।
317. 'कृष्ण' शब्द की व्युत्पत्ति स्वयं को अर्जुन से जोड़ती है और 'राधा' की व्युत्पत्ति इसके पाँच प्राणों या जीवन-श्वासों पर अनुप्रयोग को निर्दिष्ट करती है, जिन्हें केवल धार्मिक भक्ति द्वारा ही समझा जा सकता है।
318. उद्धरण 5 कृष्ण के पिता शौरी को पाँच सूक्ष्म तत्वों के प्रतिनिधित्व के रूप में वर्णित करता है और इसलिए उनका कोई भौतिक रूप नहीं है, और उनसे उत्पन्न होने वाले कृष्ण भी समान रूप से निराकार हैं।
319. उद्धरण 1 उस मंत्र को संदर्भित करता है जिसमें पाँच भाग या पद हैं जो कृष्ण के महत्व को गठित करने वाले पाँच सूक्ष्म तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
320. कहा जाता है कि यह मंत्र विशेष रूप से चंद्र-ध्वज द्वारा समझा या प्राप्त किया गया है, जो स्पष्ट रूप से सोम-वंश या कर्म-योग के अनुयायी की ओर संकेत करता है। उद्धरणों से यहाँ चुने गए ये कुछ बिंदु श्री-कृष्ण के व्यक्तित्व से जुड़े कुछ निश्चित और प्रासंगिक विचारों को प्रस्तुत करते हैं।
321. कुछ अवतारों के लिए बताया गया नीला या काला रंग उद्धरण 9 में समझाया गया है। संरक्षण के विचार को सात्विक और श्वेत, सृजन को राजसिक और लाल, तथा विनाश को तामसिक और गहरा (काला) बताया गया है।
322. ये भेद स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि रामायण और महाभारत दोनों में हमें जिन अवतारों के साथ व्यवहार करना है, वे विशेष रूप से मनुष्य के भीतर के उन सभी परेशान करने वाले भौतिक विचारों और धारणाओं के विनाश को संदर्भित करते हैं, ताकि वह दिव्य सृष्टि के उच्च क्षेत्र में आरोहण करने और शांतिपूर्ण आनंद में अनंत काल तक रहने में सक्षम हो सके।
323. शैव पुराणों और आगमों में, विनाश और सृजन के समान विचार शिव-लिंग की परिभाषा में व्यक्त किए गए हैं। 'लिं' का अर्थ विनाश और 'ग' का अर्थ सृजन है।
324. मौजूदा भौतिकता के पूर्ण विनाश के बाद जो शाश्वत ज्ञान, प्रकाश और आनंद उत्पन्न होता है, वही लिंग है।
325. श्री-कृष्ण की 16,000 प्रिय गोपियों को स्पष्ट रूप से ब्रह्म का विवेचन करने वाले विभिन्न उपनिषदों के संदर्भ में समझाया गया है।
326. प्रत्येक गोपी के घर में भगवान की उपस्थिति को सुरक्षित रूप से माना जा सकता है, और इसलिए किसी भी गोपी की कृपा प्राप्त करके उन्हें आसानी से खोजा जा सकता है।
327. इस प्रकार गोपियों की कहानी गलत समझे जाने के लिए बहुत सरल है यदि केवल इसके अर्थ की जांच की जाए - यह विशुद्ध लापरवाही पूर्ण अज्ञानता है जो सभी अनावश्यक और ईश-निंदापूर्ण टिप्पणियों की ओर ले जाती है।
328. यह ध्यान देने के लिए सामान्य ज्ञान ही पर्याप्त है कि 16,000 जैसी बड़ी संख्या में गोपियों को शाब्दिक रूप से किसी एक व्यक्ति की प्रिय महिलाओं के रूप में नहीं कहा जा सकता।

329. यहाँ अतिशयोक्ति और पौराणिक कल्पना का तर्क लाए जाने की संभावना है। लेकिन, यह मानने का क्या तर्क है कि इन धार्मिक ग्रंथों के सभी लेखक इतने मूर्ख थे कि उन्होंने अपनी कहानियों को उस तरीके से सुनाया जिसकी आलोचना की जाती है, और इस विश्वास का क्या प्रमाण है कि आलोचक इस विषय पर अधिक बुद्धिमान और बड़ा अधिकारी है?
330. कुल मिलाकर, ऐसी आलोचनाएं केवल यह साबित करने का काम करती हैं कि वर्तमान सदी की कथित सभ्यता भी अपने पिछले बर्बरता के सामयिक प्रकोपों से पूरी तरह मुक्त नहीं है।
331. महाभारत निर्दिष्ट करता है कि श्री-कृष्ण का जन्म अंधक-वृष्णि के परिवार में हुआ था, जिसका सामान्य नाम यदुकुल है, जो सोम-वंश की एक शाखा है।
332. 'यादव' शब्द को निरुक्त में उन मनुष्यों के संदर्भ में समझाया गया है जिन्होंने गुरुओं या उचित शिक्षकों की मदद से गलत रास्ते से लौटकर सही रास्ता अपनाया है।
333. अंधक और वृष्णि एक समान विचार को संदर्भित करते हैं। वृष्णि प्रकाश या ज्ञान की ओर संकेत करता है और अंधक अंगों (इंद्रियों) के पूर्ण नियंत्रण की ओर।
334. श्री-कृष्ण की सामान्य अवधारणा हमेशा अपने चंचल स्वभाव में एक बालक के रूप में रही है। यह निस्संदेह उन सुखद भावनाओं को दर्शाता है जो मन योगिक आनंद की प्राप्ति में निरंतर अनुभव करता है।
335. गोकुल, व्रज या गौशाला में श्री-कृष्ण के जन्म का वर्तमान लोकप्रिय विचार 'गो' शब्द के विभिन्न अर्थों पर आधारित है। संस्कृत में 'गो' का अर्थ प्रकाश की किरण, इंद्रिय, चंद्रमा आदि के साथ-साथ गाय भी है।
336. भगवान का एक 'तुच्छ गौशाला' में अवतार लेना अन्य धर्मों में भी पूरी तरह से कोई विचित्र तथ्य नहीं है। साधारण भाषा में गाय या 'पशु' का उपयोग लाक्षणिक रूप से सुस्त और मूर्ख को दर्शाने के लिए किया जाता है। पौराणिक भाषा में इसमें पूरी भौतिक सृष्टि शामिल है जो हमेशा ईश्वर या पशुपति (पशुओं के स्वामी) की दया पर निर्भर करती है।
337. 24 तत्त्वों से युक्त विषय वे 'पाश' या रस्सियाँ हैं जो मनुष्य को सदैव बांधे रखती हैं। इंद्रिय विषयों का नाम इसलिए रखा गया है क्योंकि यदि वह उनके स्थानों में कदम रखता है तो वे उसे जकड़ लेते हैं।
338. इसलिए जो स्वतंत्रता की परवाह करता है, उसे उनसे दूर रहना चाहिए।
339. उद्धरण G स्पष्ट रूप से गाय को वेदों के रूप में कर्म-भूमि के रूप में परिभाषित करता है और जो इसकी देखभाल करता है वह गोप है।
340. संस्कृत या दुनिया की किसी भी अन्य ज्ञात भाषा के लिए किसी भी विचार को इससे सरल शब्दों में समझाना असंभव है, और ऐसे वर्णनों को समझने में किसी भी अन्य कठिनाई का श्रेय केवल समझ को ही दिया जा सकता है।
341. सुदामा, अर्जुन और कंस आदि, तथा ललिता, कुब्जा और पूतना आदि को क्रमशः श्री-कृष्ण और राधा की सात्विक, राजसिक और तामसिक रचनाओं के रूप में वर्णित किया गया है, जो उनके दिव्य खेल (लीला) के लिए हैं जो एक हजार युगों की अवधि तक चला।
342. इस संबंध में उद्धरण 7 में गोलोक के वर्णन को विशेष सूचना के बिना नहीं छोड़ा जा सकता। जब मनुष्य की सभी प्रपंचमय धारणाएँ नष्ट हो जाती हैं, तो प्रकाश का एक पुंज प्रकट होगा, जिसके भीतर तीन प्रसिद्ध धार्मिक लोक देखे जाएंगे।
343. उनसे भी आगे, ईश्वर के योग द्वारा संपोषित और गोपों तथा गोपियों से भरा गोलोक स्थित है। जब इसका लय होता है, तो अकेले श्री-कृष्ण शेष रह जाते हैं।
344. इसके नीचे दाईं और बाईं ओर वैकुंठ और शिवलोक नाम के दो लोक हैं। वैकुंठ में लक्ष्मी और नारायण निवास करते हैं, और शिवलोक में शिव और उनके गण अन्य सभी साजो-सामान के साथ रहते हैं।
345. ये दोनों लोक लय होने पर अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ते। गोलोक के केंद्र में शाश्वत प्रकाश का एक सुखद पुंज है जिसका योगी हमेशा ध्यान करते हैं और ज्ञान की दृष्टि से उसे देखते हैं।
346. उद्धरण 2 और 3 से हम समझते हैं कि नंद आनंद का प्रतिनिधित्व करते हैं; यशोदा मुक्ति का आधार; रोहिणी दया; सत्यभामा धरा या सच्चा मन; वृंदा भक्ति; बलराम अनंत; कंस कलि; चाणूर और मुष्टिक घृणा और ईर्ष्या; कुवलयपीड गर्व; बक अहंकार; अघासुर सबसे बड़ा रोग; मित्र और सुदामा शम; अक्रूर और उद्धव दम; इसी तरह शंख, चक्र, तलवार, शार्ङ्ग आदि उपकरण तर्कसंगत वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

347. हम पहले ही पर्याप्त से अधिक बिंदुओं से गुजर चुके हैं जो हमें श्री-कृष्ण के महत्व को समझने में सक्षम बनाते हैं, जैसा कि ऊपर उद्धृत विभिन्न ग्रंथों से एकत्र किया जा सकता है।
348. योग के साथ भगवान का घनिष्ठ संबंध हर जगह स्पष्ट रूप से अंकित है, और उनके कार्य का क्षेत्र सांसारिक अस्तित्व से बहुत ऊपर स्थित है।
349. नाट्य पात्रों में मनुष्य के सर्वोत्तम और निकृष्टतम गुण शामिल हैं, जिनका मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से पारस्परिक संघर्ष योग के उन नियमों द्वारा निर्देशित होता है, जो सभी ग्रंथों में समान रूप से मान्यता प्राप्त पौराणिक शैली में प्रतिपादित किए गए हैं।
350. विचाराधीन इस महत्वपूर्ण विषय का विवेचन करने वाले ऊपर दिए गए विभिन्न उद्धरणों के संबंध में, आधुनिक सभ्यता के आलोक में, भारतीय साहित्य के इतिहास में उपनिषदिक और पौराणिक काल से संबंधित हाल ही में सामने आए पुरातात्विक खोजों और भेदों को अनदेखा करना स्वाभाविक रूप से एक कमजोरी मानी जाएगी।
351. उपनिषदों के पहले तीन उद्धरण स्पष्ट रूप से श्री-कृष्ण की पौराणिक कहानियों का वर्णन करते हैं, लेकिन पुरातत्वविद् के मान्यता प्राप्त सूत्रों को उन्हें बाद के प्रक्षेप (मिलावट) के रूप में खारिज कर देना चाहिए।
352. इस दर से, अच्छी खासी संख्या में धार्मिक ग्रंथों की इसी तरह निंदा की जा सकती है, लेकिन यह निश्चित रूप से कोई कारण नहीं है कि हमें इस प्रश्न का सीधे सामना क्यों नहीं करना चाहिए।
353. कथित तर्क के माध्यम से पूरे मामले को पलटने के भविष्य के प्रयास की संभावना की अनुमति देना खतरनाक होगा।
355. श्री-कृष्ण, जो अर्जुन के मित्र, वृष्णि वंश के सदस्य और दुष्ट राजाओं के संहारक हैं, और जिनकी पूजा यहाँ समझाई गई है, उनके समर्पित आश्रितों द्वारा आह्वान किए जाते हैं। "वे, जिनकी महिमा का गान हमेशा गोपियों और नारद जैसे ऋषियों द्वारा किया जाता है, हमारी रक्षा करें।"
356. इस निबंध के हित में श्री-कृष्ण के इतिहास को समाप्त करने से पहले, पुष्टि के लिए विष्णु पुराण से एक बिल्कुल समान अंश उद्धृत किया जा सकता है।
357. ऊपर उद्धृत सभी अंश 'शब्द-ब्रह्म' या 'पुराण-पुरुष' के पौराणिक विवरण प्रदान करते हैं, जो भौतिक अशुद्धता के मिश्रण के बिना ध्यान किए जाने में सक्षम है, जो पहले बताए गए आपत्तिजनक 'विषयों' की श्रेणी में आता है। यहाँ विस्तृत रूप 'सकल-निष्कल' है, जो निराकार का अमूर्त रूप है।
358. जबकि, लोकप्रिय भूल यह है कि इसे भौतिक रूप के संदर्भ में लिया जाता है, जिसका वास्तव में हमारे पवित्र धर्म के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। यहाँ तक कि कम बुद्धि वालों के लिए निर्धारित मूर्तियों को भी केवल सुझाव मात्र बताया गया है। "चिन्मक" एक ऐसी वस्तु है जिसका उपयोग सुझाव के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक मूर्ति में हाथों की संख्या का उच्च विचारों के प्रति अपना विशिष्ट संदर्भ होता है।
359. सत्त्व, रज, तम और अहंकार चार हाथों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसका अर्थ है कि भगवान की महिमा के ध्यान में इन शुद्ध तत्त्वों के नीचे कुछ भी नहीं देखा जाना चाहिए। दस हाथ ब्रह्मांड के दस दिशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो भगवान की सर्वव्यापकता की ओर संकेत करते हैं। जितने कम तत्त्वों का उपयोग किया जाता है, उतना ही अधिक उपासक की योग्यता मानी जाती है।
360. इसलिए बिना किसी विशिष्ट रूप के शिव-लिंग को शैवों द्वारा पूजा के लिए एक उच्च और श्रेष्ठ वस्तु माना जाता है। मूर्तिपूजा के रूप में हिंदू धर्म के खिलाफ सभी अज्ञानी आलोचनाएं इसलिए अप्रासंगिक हैं और पूरे मामले का दर्शन अत्यंत सरल है। भौतिक रूपों की सभी किस्में केवल हमारे अपने मन की रचनाएं हैं जो अपने अस्तित्व के लिए अपने से ऊपर के कई तत्त्वों पर निर्भर करती हैं और उच्च अवस्था प्राप्त होने पर नष्ट होने के लिए अभिशप्त हैं।
361. हमने पहले ही देखा है कि उच्च तत्त्वों के साथ संयुक्त ध्यान में भी, शाश्वत अधिष्ठान (**Eternal Substratum**) ही प्रमुख विषय होता है। हमारे धर्म के दैनिक अनुष्ठानों में, ये सरल तथ्य स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। हमारे प्राचीन धर्म के ऐसे मूलभूत सिद्धांतों के साथ, भगवान को मानव या पशु रूप में शाब्दिक रूप से अवतार मानकर स्वीकार करना, उन्हें क्षणिक भौतिकता के निम्नतम स्तर पर खींचना, निश्चित रूप से हिंदू धर्म नहीं, बल्कि निषिद्ध अधर्म है।
362. इस गंभीर गलती के लिए पवित्र ग्रंथों में एक भी छिद्र नहीं छोड़ा गया है और कोई भी अज्ञानता या विकृति सत्य को उलट नहीं सकती। हमारे सबसे पुराने धर्म के पुनर्गठन के लिए आधुनिक सुधारकों के सभी सुझाव, जो सामाजिक और राजनीतिक उद्धार के वर्तमान विचारों पर आधारित हैं, साथ ही

भौतिक विज्ञान की बुद्धिमत्ता या जादू के रहस्यों को जोड़कर इसे तर्कसंगत बनाने के सभी प्रयास, पूरी तरह से लक्ष्य से परे हैं।

363. अध्ययन करने और समझने की इच्छा ही वास्तव में आवश्यक है, और यह जल्द ही हमें हमारे वास्तविक भरण-पोषण के लिए मीठा और सुखद भोजन प्रदान करेगी और हमें भीख मांगने और उधार लेने की अनावश्यक परेशानी से बचाएगी। हम यहाँ उपनिषदों, पुराणों और भागवत से श्री-कृष्ण के सही महत्व की अपनी जांच को रोक सकते हैं।
364. हालांकि, इस संबंध में हमारे तेजी से क्षय हो रहे धर्म के हित में थियोसोफी (Theosophy) के खिलाफ हमारी पुरानी शिकायतों को दोहराना मुझे बहुत पीड़ा देता है। हमारे धर्म और दर्शन के प्रति अत्यधिक स्थानीय उदासीनता के बीच, यह वास्तव में बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि भ्रम को और अधिक बढ़ाने के लिए विभिन्न धर्मों के अपने मिश्रण के साथ विदेशी पंथ हमारे बीच प्रकट हुए।
365. यदि थियोसोफिस्ट दुनिया के हर प्रकार के धर्म के साथ खुद को जोड़ते हैं, जैसा कि वे दावा करते हैं, तो हम निश्चित रूप से यह अनुमान नहीं लगा सकते कि उन्होंने दुनिया के अन्य हिस्सों की तुलना में भारतीय भूमि के प्रति अपना प्रेम अधिक आंशिक रूप से क्यों प्रदर्शित किया है।
366. हिंदू लंबे समय से अपने धार्मिक विश्वास और भक्ति के लिए जाना जाता है, और उसकी वर्तमान धार्मिक अज्ञानता के साथ उसकी विरासत में मिली भक्ति प्रवृत्तियों का फायदा उठाकर भारत में ही हिंदू धर्म की पश्चिमीकृत बेतुकी बातों का प्रचार किया गया, मानो हिंदू के तत्काल पतन के लिए स्थानीय विकृतियां अपर्याप्त थीं।
367. उन्होंने अन्य धर्मों के सार के साथ हिंदू धर्म के सार को निकालने के अपने प्रयोगों में हमारे पवित्र धार्मिक क्षेत्र में बहुत अधिक अतिक्रमण किया है। इसलिए हमारे अपने पक्ष में एक शब्द कहे बिना आगे बढ़ना असंभव है, ताकि हमारे उचित मार्ग में फेंके गए सभी आसन्न खतरों से बचा जा सके।
368. यह आश्वासन दिया जा सकता है कि उनके विचित्र सिद्धांतों की आलोचना करने का कोई प्रयास यहाँ नहीं किया गया है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए कि उनकी सांप्रदायिक पद्धति में हिंदू धर्म से संबंधित उनकी सभी खोजें पूरी तरह से अप्रासंगिक और अनावश्यक हैं। उन्होंने आज तक यह जानने का कोई ठोस सबूत नहीं दिया है कि वे उस गलत स्थानीय पंडित से बेहतर कुछ जानते हैं।
369. थियोसोफिस्ट निश्चित रूप से महा-भारत और रामायण को वास्तविक मानव इतिहास के रूप में लेते हैं और उनके साथ अपनी सामान्य भ्रमित करने वाली शैली में व्यवहार करते हैं। दुनिया के सभी कोनों से उनके द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित अनकुल पुस्तकों के बावजूद, यह बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार किया जाना चाहिए कि वे अब तक इनकी वास्तविक सामग्री को समझने में सक्षम नहीं हुए हैं।
370. श्रीमती बेसेंट उनके ठिकाने तक के बारे में पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं। आज के आदरणीय पंडित की तरह, वह वास्तव में मानती हैं कि राम और कृष्ण का जन्म अयोध्या और मथुरा में हुआ था और वे साधारण मानव जाति की तरह मर गए। जोत वाली जमीन से सीता का जन्म और अग्नि से द्रौपदी का जन्म जैसी घटनाओं को शायद एक महान शब्द 'गूढ़वाद' (Esoterism) द्वारा समझा दिया जाएगा।
371. विषय की अज्ञानता को छिपाने के अपने व्याकुल प्रयास में, वह स्वाभाविक रूप से भूल जाती हैं कि यदि कहानियाँ मानव इतिहास होतीं, तो गूढ़वाद और प्रत्यक्षवाद के संयोजन की कोई गुंजाइश नहीं होती।
372. 'श्री रामचंद्र, आदर्श राजा' के पृष्ठ 8 पर वह लिखती हैं कि श्री राम ने त्रेता युग के अंतिम भाग में शासन किया, और जब वे पृथ्वी से चले गए तो द्वापर युग शुरू हुआ। वह कहती हैं कि सभी मनुष्य दिव्य अवतार हैं।
373. इस मां पृथ्वी की सतह पर मानव के रूप में राम और कृष्ण के जन्म के संबंध में उद्धरणों में व्यक्त स्पष्ट धारणा के अलावा, एक उल्लेखनीय बिंदु यह है कि उन्हें इस बात का जरा भी अंदाजा नहीं है कि हमारे धार्मिक ग्रंथों में युग का क्या अर्थ है। हमने पाया है कि वे भारत-वर्ष की सीमाओं के बाहर अस्तित्व में नहीं हैं।
374. श्रीमती बेसेंट हालांकि दुनिया के हर राष्ट्र को युगों का विशेषाधिकार देने के लिए उत्सुक हैं। पुनः पृष्ठ 167 पर वह लिखती हैं कि प्रकट ब्रह्मांड में कुछ भी कर्म की सार्वभौमिकता से बाहर नहीं है। वह कहती हैं कि राम और सीता साधारण पुरुष और महिला के रूप में दुनिया में आए, मानव जीवन जीते हुए।

375. श्रीमती बेसैंट के थियोसोफिकल लेख यह साबित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वह हमारे किसी भी धार्मिक ग्रंथ में वर्णित समय, स्थान और व्यक्तित्व के वास्तविक महत्व से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। भूगोल और इतिहास के प्रत्यक्ष वर्णनों को संदर्भित करने वाले ये तीन मुख्य मद साहित्य की सामग्री को समाप्त कर देते हैं।
376. थियोसोफिस्ट एक वर्ग के रूप में इसलिए इसका श्रेय नहीं ले सकते कि उन्होंने हिंदू धर्म के एक कण को भी सही ढंग से समझा है। पाठकों को हमारे देश में थियोसोफी के प्रचार के स्वाभाविक परिणामों का न्याय करना चाहिए, विशेष रूप से ऐसे समय में जब राष्ट्र समग्र रूप से लगभग धार्मिक दिवालियापन के कगार पर पहुँच गया है।
377. इस पंथ द्वारा बौद्ध सिद्धांतों को हिंदू धर्म के साथ मिलाने का निरंतर प्रयास धार्मिक और दार्शनिक रूप से गलत है। बौद्ध धर्म, हालांकि हिंदू धर्म की एक शाखा है, लंबे समय से दार्शनिक रूप से आलोचना की गई है और धार्मिक रूप से खारिज कर दी गई है।
378. लेकिन इस तरह से धर्म की दो विपरीत प्रणालियों को मिलाने और हिंदू आबादी के बीच प्रचार करने का प्रयास, विशेष रूप से उनके द्वारा जिन्हें किसी का सही ज्ञान नहीं है, निश्चित रूप से इस सभ्य सदी की एक अशुभ घटना है। थियोसोफी तथ्यों और विचारों के भ्रम से भारत के कई शिक्षित युवाओं को गुमराह करने में सफल रही है।
379. हालांकि यह कुछ हद तक सांत्वना की बात है कि इसने अभी तक पंडितों और आम जनता की कल्पना को ज्यादा आकर्षित नहीं किया है। सर्वशक्तिमान उन्हें गुमराह होने से बचाए!